

ॐ  
श्रीहरिः ॥

# श्रावपितृमीमांसा जिसको

“वेदसंज्ञाविचार” और “आधु-  
निक महर्षि की पोल” नामक  
पुस्तकों के रचयिता

( सिन्ध ) करांची सनातनधर्म  
भगदलके संरक्षक पण्डित  
श्रीकुल चन्द्र शर्मा ने  
निर्माण किया

Printed by B.D.S. at the Brahm

Press Ftawah-city

प्रथमवार } विं संवत् १९६९ { =मूँगी ॥  
१००० } ईं सन् १९७२ { ढा० प०

" " "  
॥ श्रीहरि ॥

# श्राद्धपितृभीमांसा

जिसको

(चिंधु) ठट्टा देशीय विद्वद्वर परिड-  
त श्रीचीरभानु शम्भात्मज, करांची „स-  
नातन धर्म“ मराठलके,, संरक्षक  
यं० गोकुल चन्द्र शम्भा ने

श्रुति (वेद), स्मृति-श्रौतसूत्र पुराण आदि  
धर्म शास्त्र एवं श्रीरामायण-भाहाभारतादि धर्म  
इतिहासों के प्रबल प्रमाण और सद्युक्तियोंसे  
अलंकृत करके सर्व आस्तिकजनों के विविधसं-  
देह निवारणार्थ रचा ॥

और

श्रीमान् चत्रिय कुलदिवाकर सनातन धर्म  
प्रचारोत्साही (लुहाणा वण तिलक) ठट्टा देशी-  
य एक उदारचित्तव्यक्ति ने सर्व वेदभारतानुया-  
इयों के उपकारार्थ दृपाकर प्रसिद्ध किया ॥

प्रथमवार } १०००	विक्रम सं० १९६९	{ दृपालखर्च
	द्विं० सन् १९९३	अलग

- १८ आहु कर्म में योग्य ( अधिकारी ) और  
अयोग्य ( अनाधिकारी ) व्रात्यरणों का  
निर्णय और आहु भोक्ता तथा कर्ता की  
आहु दिन में अवश्य शास्त्रोक्त नियम  
से रहने की विधि ॥ ४५ ८१
- १९ कलियुगमें समयानुकूल आहुदि कर्मकैयोग्य  
सुपात्र व्रात्यरणों का अत्युत्तम निर्णय । ४६ ८२
- २० समयानुकूल सुपात्र व्रात्यरण के न मि-  
षने में, आपत्ति काल में तथा तमाम  
दरिद्रता यानी कंगालपने की हालत  
में भी गीण आहु करने की अत्यन्त आ-  
वश्यकता और और सुगम विधि । ४८ १०१
- ॥ सप्तम अध्याय में ॥
- २१ प्रिय आर्थ्य समाजी नहाशयों से आहु  
विषयक ३७ तीस प्रश्नों का सम्यता  
पूर्वक सप्रमाण युक्तियुक्त शीघ्र २ उत्तर  
मिलने के लिये प्रार्थना । १०२ ११९

## नम्रतया सूचना !!

मेरे प्रिय सम्यगणों को नम्रता से सूचित किया जाता  
है कि मेरी जन्म भूमि सिन्धु देश होने के कारण मेरा हिंदी  
भाषा लिखने का ऐसा सरल अभ्यास नहीं है इस लिये क-  
टाचित् कहीं हिन्दी लिखने में अद्वैत-शब्द-ब्रा भाषा शीली  
की गती भालून हो जाय तो रूपा करके दमा करें और  
हस वृत्ति से इस पुस्तक में सेतन्व रूप दूध का ही ग्रहण करें  
भवदीय रूपाभिलाषी—गोकुलचन्द्र ॥

यह पुस्तक सनातनधर्ममण्डल करांची की सहायतार्थ—)।  
पांच पैसा धर्मार्थ लेकर विना मूल्य दिया जाता है ॥



तटपुष्पाय विद्वस्ते 'वक्तुण्डाय धीमहि, तत्रो दन्तः  
प्रचोदयात् ॥ कृ० यजु० आरण्यक म० १० अनु० ५ ॥  
श्रीगणेशायनमः । श्रीविष्णुरायनमः ॥ श्रीविष्णुरायनमः ॥॥

## ॥ भूमिका ॥

मिय पाठक बृन्द ! ध्यान में रहे कि इस ह-  
मारे सनातनधर्म के विरोधी वितण्डावादी दुरा-  
ग्ही अशास्त्रीय सम्प्रदाय के जन पूर्वकाल से चले  
आते हैं और अपनी माया रूपी बंचना शक्ति से  
उक्त धर्म के प्रबंधों को असत्य मानकर श्रेनेक प्र-  
कार के उपद्रवों से आक्रान्त [ पीड़ित ] करते र-  
हते हैं परन्तु उन पक्षपातियों के विद्यातों से वह  
सनातन धर्म अद्यावधि अनवच्छिन्न अभिदग्ध सु-  
वर्ण की न्यांईं अपनी कीर्ति रूप निर्मल कान्ति  
से प्रकाशवान् ही रहा, प्रत्युत वेही द्वे पी निर्मूल हुए ।  
और समय २ के अनुसार श्रेनेक मत तथा पंथ जो  
श्रुति स्मृति विरुद्ध प्रसरित हुये वे भी घोर रजनी  
में खद्योत ( खुब् खुबीरे ) के तुल्य अपना चम-  
त्कार चमकाय स्त्रियक अंधकारके साथ ही लय हो

गये । अब इस वर्तमान काल में आधुनिक नवशिक्षित युवक जन समाजी भाईजाँ जिन्हों की बुद्धि में विपरीत भाव का आवेश हो रहा है वे सनातनधर्म निर्बंध ग्रंथ कृत्य रीतियों को केवल कल्पित मानकर अपनी प्रजन्त उक्ति युक्ति कपोल कल्पना को सत्य मान रहे हैं, और शास्त्र विरोधी जनों के मिथ्या प्रलाप कूट निर्बंधों को सार्यक मानकर अत्यय कर बैठे हैं, प्रत्युत उन्हों अघटित घटना प्रभव निर्बन्धों को वार २ मुद्रायन्त्रों द्वारा प्रवर्तन कर रहे हैं तथा यत्र २ विद्वद्वरिणों ने दैश दिया वा निरुत्तर किया उन पंक्तियों को छोड़कर स्वकल्पित उक्ति युक्ति स्वापित कर रहे हैं । महा शोक है ? कि इसी सनातन धर्मावलम्बियों के दंश में उत्पन्न होकर प्रथम अपने ही सनातन धर्म रूपी वन को व्यर्थ वितंडा वाञ्छाल कुठार से छेदन कर रहे हैं ? और पूर्व ग्रंथ कर्ता वृषभिगण तथा निज पूर्वज शाचार्यों को अल्पज्ञ मानकर अपने ही विशिष्ट वृद्धों का उपहास कर रहे हैं । यद्यपि अनेक बार प्रत्येक सनातनधर्म सभायों से ये वितंडावादी निरुत्तर हो चुके हैं तथापि—“जानत हैं दूभत नहीं लोनत ऐसी जिन्द । तुलसी इस संसारको हुआ भोतिया विंद” इत्यादि केवल हठ भाष्य स्थित होकर अलभिज्ञ भारण जन समूह को चन्नार्ग से चपुत फरने की योगिश कर रहे हैं को अब इन्होंके अस्तिर कुतर्क

रूप वार्गोल को श्रुति समृति आदि धर्म शास्त्रोंके  
प्रबल प्रभाषण और अकाटब युक्ति युक्त इस “आ-  
द्ध-पितृमीमांसा” नाम पुस्तक रूप वज्र से निर्मल  
चेदन करने के लिये श्रीमान् क्षत्रिय कुल भूषण स-  
द्धर्म प्रचारोत्थाही उदार चित्त सेठ जी प्रते निज  
प्रेम पूरित प्रवंध करने में कोटिशः धन्यवाद देकर  
१ \* गुप्त नाम में सुन्मान पञ्चश्रवण किया जाता है ॥

### सुन्मानपत्रम् ॥

सहृदयमार्गं परिपोपविधावतन्दः ।  
ठट्ठा व्रजाऽधिपति कश्चित् क्षत्रिवीरः ॥  
सत् न्नाहुँ मण्डन मकार यदाङ्गयादः ।  
सच्छाल्लसिद्धनयसंहतसर्ववादः ॥१॥

अथर्व-ग्रेषु धर्म मार्ग के पालन विधिमें आ-  
लस्य रहित “ठट्ठा” नाम द्वजके अधिपति क्षत्रिकुल  
में दीर किसी एक पुरुष ने पूर्ण प्रेम से, सम्पूर्ण कु-  
तंकों के निवारण करने वाले ग्रेषु शास्त्रों से सिद्ध  
किये गये युक्तियुक्त इस “आद्ध-पितृ-मीमांसा”  
नाम पुस्तक के रचनार्थ (सर्वपिकार होने में) आ-  
ज्ञा की ॥१॥ उत्तो—

१ \* लिख क्षत्रिय दीर सेठ जी ने ऐसे परमार्थ रूप उ-  
त्तम दान में अपना नाम प्रसिद्ध ( प्रगट ) न कराने में पूर्ण  
उदारता दिखलाई है, शर्यांत “गुप्तदान सहापुरण” का ही  
भनुप्ररण किया है । इस लिखे सेठ जी के कहे अनुमार नाम  
प्रगट नहीं किया गया है ॥

दुरुत्कर्मानव पराकृतशास्त्रसिद्धिश्रादूप्रयोग सम  
नुष्टितसिद्धिसाधुम्। संदर्भमेतदखिलं च यामिनून्  
ठठूठाव्रजाधिपतिक्षत्रिवरेण्युक्तः ॥२॥

शास्त्र विरह्द्ध खोटे तर्क करने वाले मनुष्यों से  
हूर किये गये जो वैदादि श्रेष्ठ शास्त्र सिद्ध “आद्व  
कर्म प्रयोग” उन के अनुष्ठान को पुनः सिद्ध  
करने वाले इस संदर्भ अर्थात् व्याख्यान रूप लघु  
ग्रन्थ को ठठा नाम ब्रजके। अधिपति श्रेष्ठ स्त्रिय  
की आङ्गड़ा से निश्चय पूर्वक रचता हूं \* ॥२॥

सो यह—

“ठद्धाव्रजस्थितसुधर्म सभास्थर्थसभ्य-  
विप्रेणवीरभान्वात्मज तद्विलेखि ॥

आद्वीयकर्मणि कुतर्किकृतानुयोग-  
स्तस्योन्तरं भवतु आस्तिकवर्यतुष्टयै” ॥३॥

ठठा नाम ब्रजमें स्थित, सनातन धर्म सभाके  
संरक्षक सभ्य श्रीवर पं० वीरभानु शर्मात्मज ग्री-  
ष्मण करके लिखा गया ( आद्व कर्ममें कुतर्किलोगों

\* यद्यपि मेरे प्रिय सिंधी भाताजों को सुगमता से स-  
राफने के कारण यह पुस्तक मैंने सिंधी भाषा में ही रखा था  
लिखकी सूचना मेरे यज्ञाये “आधुनिक महर्यिकी पोस्त” श्रीर  
“वेद संज्ञा विधार” इन दोनों ट्रैकटों के पिछारी में छपाई  
गई थी परन्तु यन्वालप वालों से सिंधी भाषा की भाषा जै-  
सी ठीक शुद्ध ग लाप चकने के कारण पुनः यह हिन्दी में ही  
डोना ठीक उमफ कर दिनदी में छपाया गया है इस लिये  
मेरे सिंधी भाई सुके लगा करें ॥

से किये गये मिथ्या कुतकों का ) सत्य समाधान  
रूप उत्तर आस्तिक जनों के प्रसन्नतार्थ होय ॥ ३ ॥

हे श्रीमान् ! आप सनातनधर्म रक्षक के कर  
कमलों में श्रीनंदनन्दन के प्रसाद रूप, तथा श्राश्री-  
वर्दि की कुसुमाञ्जली रूप यह “आद्व पितृ भीमांसा”  
नामक ग्रन्थ अर्पित है। जैसा है आप का है लीजिये ॥  
शान्तिरस्तु । आरोग्यस्तु ॥ आयुष्मस्तु ॥

तदीय सार्वदिक शुभचिन्तक गोकुलचन्द्र ।



॥ ३ ॥

सत्यमेव जयतिनाऽनृतम् ॥  
 उच्चिष्ठुतजाग्रत् प्राप्यवरान्निवोधत् ॥  
 नहि सत्यात् परोधमर्मा नाऽनृतात्पात्तकं परम् ॥

३०

“एकं विवेकं नुमः”

॥ प्रार्थना ॥

ओ॒ऽम् नमः श्रीराम्बवसदा शिवाय ॥

ओ॒ऽम् सहनावीवसुसहनौ भुनक्तुसहवीर्यंकरवावहै।  
तेजस्विनावधीतमरतु माविद्विपावहै ॥ १ ॥

ॐ श्रुतिनिगदितधर्माकिं स्मृतिगतधर्मारुणीदयःशशवत् । पौराणिकधर्मोद्धिः पाखण्डध्वा-  
न्तनाशनोजयतु ॥ २ ॥

शुक्रांब्रह्मविचारसारपरमामाद्यांजगदुव्या-  
पिनीम् । वीणापुरुतकधारिणीमभयदांजाड्या-  
जन्धकोरापहाम् ॥ हस्तेस्फाटिकमालिकां विद-  
धतींपद्मासने संस्थिताम् । वन्देतांपरमेश्वरी-  
मधगवतीं बुद्धिप्रदांशारदाम् ॥ ३ ॥

दोहा घनं धीवन उड जांयगे, जैसे उडत कपूर ।

मग मूरख गोखिन्ह भज कर्म चाहे जगधूर ॥

सम्यो ! आज मैं आप महोदयों के सन्मुख शास्त्रोत्त प्राद्ध कर्म पर विचार करने के निमित्त उपस्थित हुआ हूँ । आप इस बातको उत्तमता से जानते हो कि मैं न कोई ऐसा व्याख्यान दाता हूँ और न महामहोपाध्याय हूँ तथा न कदापि इस कार्य को पूर्णतया करने में समर्थ हूँ, परन्तु आप धर्म वीरों के उत्साह और [ परब्रह्म सच्चिदानन्द कंद श्रीकृष्णचन्द्र जी ] की सहायतासे साधारण आस्तिक जनों के सदैह निवृत्त्यर्थ धर्मरक्षक कतिपय ऋचिय-वरों की आज्ञाको शिरोधार्य करके, अपना ही कर्तव्य समझ कर प्रश्न-उत्तर रूप में विविध गहन सं-देहोंके निर्मूल करने वाले इस “प्राद्ध पितृ भीमांसा” नाम ग्रंथ को श्रीसद्गुरु निखिल शास्त्र निष्णात [ श्रीबालराम जी ] ( उदासीन ) एवं विद्यावाच-स्पति विद्वद्वार पं० [ श्री भीमसेन शर्मा जी ] शास्त्री विद्यावाचित्रिधि विद्वद्वार परिडित [ श्री ज्वालाम्बसाद जी' ] भिन्न तथा कूर्मचिल भूषण ऋषिकुल सं-स्थापक धार्मिवर पंडित [ श्री दुर्गादित पन्त जी ] आदि महामहोपदेशकों की पूर्ण कृपासे एवं उन्होंने के युक्ति युक्त सिद्धान्तानुसार अलंकृत करके आप धर्म रक्षकों के फर कमलों में प्रेम से शर्पण किया जाता है आशा है कि हर्ष पूर्वक इस रत्नको आदि से ज्यन्त तक अवश्य देखकर ( पढ़कर ) सद्धर्म का पूर्ण साम लेकर दीन को कृत कृत्य करेंगे ।

प्रार्थी—गोकुलचन्द्र शर्मा ।

॥ ३० ॥

नमोऽन्तर्यामिणे

अथ श्रादुपितृमीमांसा ।

प्रथमोऽध्यायः ।

“धर्मं जिज्ञासनानां प्रमाणं परमं श्रुतिः” मनु० ॥

प्रश्नकर्ता समाजी महाशय

और

उत्तरदाता सनातनी पण्डित

समाजी—श्री पण्डित जी महाराज ! दयापालो  
मेरे इस संदेह का निवारण करो कि “श्राद्ध” क्या  
है ? अर्थात् श्राद्ध किस-कर्म का नाम है और इस  
का रहस्य क्या है ?

सनातनी—महाशय जी ! आप यदि सनातन  
एवं वेदोक्त श्राद्ध समझने की सज्जी अभिलापा क-  
रते हो तो मैं आप को प्रबल प्रमाण एवं अकाटघ  
युक्तियों से श्रेष्ठ शास्त्रोक्त श्राद्ध का भावार्थ और  
उसका रहस्य भी सुनाना चाहता हूँ । जिसको सु-  
नकर और पूर्णतया समझकर तथा अपने अन्य  
सिद्ध समाजी भाइयों को भी समझाकर इस श्राद्ध  
कर्म [ पितृयज्ञ ] का शास्त्रानुकूल अद्वा से अनु-  
ष्टान करके सद्गुर्म एवं नोक्त का पूर्ण २ लाख लेकर  
दुर्लभ इस मनुष्य देह को साफल्य करें, यही मेरी  
दृढ़ आशा है ।

अथेतन्मनुः—( श्रादुमिति शब्दो वाच-  
की यस्य तत्कर्म श्रादुशब्दम् इति-मदनपारि

जातः ) श्राद्धं शब्दं कर्म प्रोत्राच्च प्रजानिःश्च-  
यसार्थं तत्र पितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहवनीया-  
र्थं मासि मासि कार्यमपरपक्षस्याऽपराह्णः श्रेयान्॥

इत्यादि आपस्तम्बीय मनु सम्मत वचनों से  
मृत पितरों के निमित्त पितृ देवों के पूजनार्थ होम,  
पिण्डदान आदि ब्राह्मण भोजन रूप जो सत्कर्म,  
यही शास्त्रोक्त आद्ध शब्दका मुख्य भावार्थ है।  
तात्पर्य यह कि प्रजाके कल्याणार्थ वेदार्थ ज्ञाता  
श्री भहर्षि मनु महाराजने एक ऐसे शुभ कर्मका उ-  
पदेश किया है कि जिसका नाम “आद्ध” वा “पि-  
तृयज्ञ” है। सो जैसे देवयज्ञ में इन्द्रादि देवताओं  
का पूजन सत्कार होता है और आहवनीय अग्नि  
उन के तृप्त्यर्थ होम का आधार है-तैसे इस पितृ  
यज्ञ में पितर देवोंका पूजन सत्कार और इन्होंके  
तृप्त्यर्थ होम का आधार अग्नि के जगह ब्राह्मणों  
का मुख है। यह कर्म महीने २ करना चाहिये और  
इस कर्म के अनुष्ठान में कृष्णपक्ष का अपराह्ण (म-  
ध्यान्ह) काल अत्यन्त श्रेष्ठ है। तथा—“अपर पक्षे  
आद्धं कुर्वीत” ; इति कातीयश्राद्धसूचे । कातीय  
श्राद्ध सूचमें कहा है कि कृष्णपक्ष में श्राद्ध करे। तथा  
शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि जिस दिन न पूर्व  
में और न पश्चिम में चन्द्रमा दीखे उसी दिन पि-  
तरों के निमित्त पिण्डदान करे । एवं—

“अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यन्ति  
तदहः पिण्डपितृयज्ञं कुरुते” ॥

आपस्तम्बीय श्रौत सूत्र  
तथा कात्यायन श्रौत सूत्र ४ । १ । १—

प्रथम प्रश्न, तृ० पटल ७ क० ॥

“अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्राऽदर्शनेऽमा-  
वास्याम्” ।

अर्थात्—दो प्रहरों के बाद जिस दिन चन्द्रमा  
देखने में न आवे, उस अमावास्या में पिण्ड पितृ-  
यज्ञ करे । प्रयोजन यह कि विवाह और यज्ञोप-  
वोतादि के तुल्य एक खास कर्म का नाम “आद्वा”  
वा पितृयज्ञ है । इसी आद्वा में जो जो कृत्य जिस  
२ प्रकार करना चाहिये और इस आद्वा के जितने  
अवान्तर भेद हैं वे सब श्रुति स्मृति श्रौत गृह्यसूत्र  
और इतिहास पुराणादि में अति प्राचीन समय से  
विस्तार पूर्वक लिखे हुए हैं जिन्हों के अनुसार अ-  
नादि काल से पद्धतियां भी चली आती हैं । जिस  
कृत्य में अद्यापर्यन्त किसी भी आस्तिक को कदापि  
संदेह नहीं होता कि आद्वा किसको कहते हैं ? परन्तु  
सब अनुमान ३० वर्षों से किन्हीं आमुरी सम्प्रदायों  
के मनुष्यों ने स्वधर्म मर्माइनभिज्ञ स्वयं भी धर्म से  
द्युत और अन्य आस्तिक साधारण जन समूह को  
भी कलिकालके प्रभाव से अधोगति में पहुंचाने के  
लिये प्रत्यक्ष नेत्रोंमें धूलभोकते हुए केवल धींगा धींगी

से यह प्रकट किया है कि जीवित माता पिता की सेवा करने का नाम आद्व है । परन्तु इसके लिये लेख प्रमाण वा प्रबल युक्ति इन्हों के पास कोई नहीं । सो अब यह कठता भी जाता है । सारांश यह है कि जैसे विवाह यज्ञोपवीतादि एक २ विशेष विधिसहित कर्म के नाम हैं वैसे ही आद्व-भी एक कर्म का नाम है—और जो (आद्वया क्रियते तच्छ्राहम्) „आद्वासे किया जाय वह आद्व है” ऐसा अर्थ करके समाजी लोग आद्व को धौगिक भानते हैं वे लोग यह तो बतावें कि वे अग्राद्वासे अपने कौन २ काम करते हैं? यदि समाजोत्सव व्याख्यानादि सभी काम आद्वा से करते हैं तो तुम्हारे सभी कामों का नाम आद्व हो गया । परं यह क्यों कहते हो कि „जीवित माता पिता की सेवा का नाम आद्व है” । क्या मद्यमांस खाने पीने वाले आर्य समाजियों का मांस मद्य खाना पीना आदि काम तुम्हारे मत में आद्व नहीं है ? क्या उन कामों को वे अग्राद्वा से करते हैं ? तथा यदि कोई आ० समाजी महाश्य किसी, समय प्रारब्ध कर्मनुसार रोग ग्रसित हो जाय तो फिर जब यह महाश्य अपने रोग के शान्त्यर्थ द्वा औपध ( वा जन्य कोई उपाय करे तो क्या वो अश्रद्धा से फरेगा ? क्या अपने शरीर के ज्ञारोग्यतार्थ उपाय करने में उसको अद्वा प्रेम न होगा ? आर्यात् यह रोगी समाजी अयश्य ही अद्वा से अपने शरीर

रक्षा के लिये उपाय करेगा-तब तो उस महाशय के अद्वा प्रेम से किये हुये उस उपाय को भी “आद्वा” कहना पड़ेगा । क्योंकि उसने अद्वा में उपाय किया था अब समाजी अपने शरीर पोषणार्थ जो भोजन करते हैं-सो वह क्या अद्वा से करते हैं ? तथा निद्रा ( नींद ) करना पायखाने में जाना और शास्त्र नियमानुसार संतान उत्पत्ति के लिये स्व-स्त्रीसे संभोग करना इत्यादि सब कुछ वे अद्वा और पूर्ण चाहना से करते हैं-तो फिर इन उपरोक्त मन्त्र कर्मों का नाम आद्वा हुआ ! फिर “अद्वया क्रियते तच्छ्रादुम्” इस पत्तिका अक्षरार्थ करके चरल सनातनी मनुष्यों की क्यों नाहक भ्रमाते हो ? और “जीवित माता पिता की सेवा”-यह अर्थ उपरोक्त संस्कृत वाक्य में से किन अक्षरों का है और कहाँ से निकालते हो ? यदि कहो कि हम अनुमान से यह अर्थ निकालते हैं तो अन्य कर्म जो ऊपर दिखलाये गये, ( उन्हों को भी अद्वा से होने के कारण आद्वा कहना ) ऐसा अर्थ आप लोगों के विश्वाल बुद्धि में नहीं समा सकता ? अर्थात् अनुमान से जैसा यह अर्थ कि अद्वा से जीवित माता पिताकी सेवा का नाम आद्वा वैसा अद्वा से उपरोक्त अन्य कर्मों को करने का भी नाम आद्वा हो सकता है । फिर यह क्यों वेद शास्त्र विश्वद्व अर्थ करके ठगीसे चरल-आस्तिकों को सन्मार्ग से गिराने के लिये

मिथ्या मनगढ़त शर्य करते हो ! कि जीवित माता पितादि की सेवा का ही नाम श्राद्ध है । इसके लिये आपके पास कोई वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है कि जिससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाय कि जीवित माता पितादि की सेवा को ही श्राद्ध कहना और न कदापि मृतकों के निर्मित दिया जाय उसको । यदि कोई ऐसा ( मृतकों के निर्मित पिण्डदान के निषेध रूप ) वेदशास्त्रों में से प्रमाण आप जिद्दियों के पास हो तो कृपा करके शीघ्र स्पष्ट ( जाहिर ) करके अपना मुख उज्ज्वल करो, अथवा ऐसा सावित करदेने के लिये यदि कटिबद्ध न होगे तो क्या सनातनी धर्मात्मा जन यह नहीं समझेंगे कि-इन आ० समाजियों का वेदोत्तम धर्म और जीवितों का श्राद्ध भक्ता मिथ्या हल्ला और आस्तिक संप्रदाय को धोखा देना भाव ही है ! परन्तु शास्त्रोत्तम श्राद्ध कर्म जिस किसी को भी देखना हो तो वह पारस्कर गृहसूच आश्वलायन श्रौत सूच, तथा परिशिष्ट कातीय श्राद्ध सूच आश्वलायन गृहसूच में एवं शांखायन श्रौत, आपस्तम्ब श्रौत इत्यादि ग्रन्थोंमें देखे तो स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि “श्राद्ध” किसको कहते हैं और उसका रहस्य क्या है “श्राद्ध” कोई अप्रसिद्ध ( छिपा हुआ ) कर्म नहीं है जिसके लिये प्रमाण देने की आवश्यकता पड़े, तथापि वेद विरुद्ध मतावलम्बी जिद्दी मनुष्यों के नद अहंकार रूप

अधिकार को उत्तरास्त्र रूपी अखण्ड सूर्य के प्रखर तेज से निवारण करने के लिये दिग्दर्शन मात्र इस प्रथम अध्याय में और विस्तार पूर्वक द्वितीय अध्याय में यथायोग्य समाधान किया जायगा कि आद्वा शब्द का शास्त्रों में कैसा अर्थ दिखाया गया है और उस का रहस्य क्या है ॥

यथा महर्षि मरीचि मुनिजन स्पष्ट करते हैं कि—  
प्रेतं पितृंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत् प्रियमात्मनः ।  
श्रद्धुया दीयते यत्र तच्छ्राद्धुं परिकीर्तितम् ॥

अर्थ—सात्त्विक भोजन जो अपने को प्रियहोय वह प्रेतयोनि में गये उस सृतक के निमित्त यथा नाम उच्चारण करके श्रद्धा से जो कुछ दिया जाय उसको ही श्राद्ध कहते हैं वा उसी कृत्य का ही नाम श्राद्ध है। तथा महर्षि पुलस्त्य मुनिजनभी स्पष्ट कहते हैं कि संस्कृतं व्यंजनाद्यं च पयोदधिघृतान्वितम् ।

श्रद्धुयादीयतेयस्मात्तेन श्राद्धनिगद्यते ॥

देशोकालेचपात्रेच श्रद्धुया विधिनाचयत् ।

पितृनुद्दिश्यविप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम् ॥

भावार्थ—दूध दही और घी से पकाया हुआ श्रम्भ आदि, श्रद्धा और शास्त्र विधि पूर्वक देश काल स्वं सुपात्र ब्राह्मणों का ठीक २ विचार करके पितरों के निमित्त श्राद्ध के योग्य ब्राह्मणों को जो कुछ दिया जाय उसको ही श्राद्ध कहा गया है॥ तथा श्री योगी याज्ञवल्क्य मुनिजी ने शाचाराध्याय में भी—

वसुरुद्राऽदितिसुनाः पितरः श्राद्धुदेवताः ।  
 प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितृन् श्राद्धेन तर्पिनाः २६०॥  
 आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।  
 प्रथच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पिता महाः । २७०॥

अर्थ— वसु तथा रुद्र एवं अदिति सुत ये तीनों पितर जो श्राद्ध के देवता हैं वो श्राद्ध करके स्वयं तृप्त हुए मनुष्यों के पितरों को भी तृप्त करते हैं । और श्राद्ध कर्ता के प्रति भी आयु, प्रजा, धन, विद्या स्वर्ग मोक्ष यथा योग्य सुख प्रदान करते हैं । इन वाक्यों से भूत पितरों का श्राद्ध चिद्रु किया है । तात्पर्य यह कि जैसे परमात्मा के सृष्टि में देवलोक आदि अन्य लोक हैं और उन्होंने के अधिष्ठाता इन्द्रादि देव हैं तैसे कर्मणां पितृलोकः वृहदारण्यक ॥

दक्षिणाग्रवणो वै पितृलोकः शतपथ—१३। ८। ४॥

इत्यादि श्रुतियों के ग्रन्थाण से एक पितृलोक भी स्वतन्त्र लोक है जिसके अधिष्ठाता शर्वमा अग्निष्वान्त एवं वसुरुद्राऽदिति सुतादि पितृदेव हैं । 'पितृणामर्यमाचास्मि' श्रीभद्रगवद्गीता अ० १० श्लो० १७५

शर्वात्—पितृलोक निवासी जो शर्वमा नामक पितर है वह मेरा स्वरूप है । सो ये जो शर्वमादि पितृ-देव हैं वे ही इस श्राद्ध कर्म में पूजनीय देवता हैं और इन्होंने को ही धेद में देवगन्पत्यर्थी से शतगुणित

अधिक आनन्द की भागी कहा है । और मरण अनन्तर पुरुष किस योनि में गया है—और कौन देश में है और उसके नाम पर उस के वंशीय पुरुषों ने क्या २ शास्त्रानुकूल कृत्य किया है, इत्यादि सब कर्म के वह समालोचक हैं ? और वही पितृ देव वैदिक मन्त्रोंसे ज्ञाहृत हुये मृत पितरों के वंशीय पुरुषों करके किये हुये आद्व कर्म में उपस्थित होते हैं और आद्व प्रदत्त आहुति तथा भव्य भोज्य आदि शामग्री के नारांश(तत्व)को वासना रूप से ग्रहण करके आद्व कर्ताके प्रति प्रसन्नता पूर्वक आशीर्वादिं देकर वैदिक मन्त्रों से विसर्जित हुये मृतपुरुषों को यथा योग्य सुख का भागीकरते हैं । ( यह सब आगे संभ्रमण स्पष्ट होगा )

यद्यपि उन पितरों का स्वरूप हमें इन चर्म चक्र-ओं से अबलोकन नहीं कर सकते हैं तथोपि शास्त्रीय

\* सर्वीश्व, सार्वभीम, चक्रवर्ती, निष्कंटक राजेय भोक्ता, निखिल कलाविशिष्ट जो अति बलिष्ठ राजा है उसको जो आनन्द है (जिसको भनुष्यानन्दकी सीमा लेही जाती है) उस भनुष्यानन्द से शतगुणित अधिक आनन्दमनुष्य गंधवाँ को है और उन्हों से शतगुणित अधिक आनन्द देवगंधवाँ को है और उन से शतगुणित अधिक आनन्द पितृलोक निवासी पितरों को है, यह सब तैत्तिरीयारवयक तथा वृहदारुप्यक में स्पष्ट है । इस लिये वे पितृनोक निवासी पितृदेव महान् वैमव वाले समर्थ और सर्वज्ञ हैं ॥

पुरुष ( अत्यन्त सत्यवादी पूर्णरीति से शास्त्र मर्यादा पालन करने वाले दृढ़ अद्वालु पुरुष ) के मन में पितरों का अदृश्य होकर आना अथवा यों कहे कि उस पूर्ण अद्वावान् पुरुषको ज्ञानचक्षु से पितरों का दर्शन होना कुछ असंभव नहीं है । क्योंकि योग शास्त्र में यह विषय स्पष्ट है कि यदि काय रूपमें पुरुष संयम करे, तो वह पुरुष अन्यों से अदृश्य हो कर यावत् अथवाहर कर सकता है । ( 'योग' दर्शन के तृतीय विभूति 'पाद' के २१ वें सूत्र में यह स्पष्ट है । ) तथा श्री वाल्मीकि रामायण में सती श्री सीताजी ने अपने मृत श्वशुर श्री दशरथ जी का आद्भोक्ता मुनीश्वरों के देह में दर्शन किया या यह प्रसंग आगे चतुर्थ अध्यायमें स्पष्ट खोला गया है ॥ इति ॥  
 महाश्य जी ! अब आपको निःसदैह स्पष्ट ज्ञात हुआ होगा कि आद्व शब्द का शास्त्रोक्त अर्थ क्या है और किस कर्म का नाम आद्व है । तथा उसका रहस्य क्या है सो भी मालूम हुआ होगा ॥  
 इति श्री आद्वपितृ मीमांसायां आद्वशब्दार्थ  
 तत्स्वरूप रहस्यं च प्रदर्शने प्रथमोऽध्यायः ॥

## अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

समाजी—श्री परिणत जी ! यह आद्धू शब्द का शास्त्र सम्मत शुद्ध शब्द, तो अच्छी तरह मेरी समझ में आया परन्तु अब कृपा करके इस विषय में मुझे कुछ और ज्यादा वेद शास्त्रों के प्रबल प्रमाणों से स्पष्ट करके बतलाओ कि आद्धू सृतकों का ही होता है वा कभी जीवित माता पितादिका भी ?

सनातनी—महाशय जी ! यदि आप जिज्ञासु होकर इस विषय का पूर्ण रीति से वेदादि शास्त्रों द्वारा निर्णय कराना चाहते हो तो मैं भी इस तु म्हारी शंका का वेद शास्त्रों के प्रबल प्रमाण व सद्युक्तियों से निवारण करता हूँ आप अब सावधान होकर और पक्षपात रूप जिद्द की लाठी को ढोड़कर मैम से मुनो !

“आद्धू” जिस कर्म का नाम है वह तो सदैव सृतकों का हो होता चला आया है और हो सकता है—जीवित माता पिता आदिकों की सेवा धर्म शास्त्रों में लिखे अनुसार अवश्य करना, चाहिये वह पितृ मातृ सेवा एवं गुरु सेवा आद्धू से भिन्न एक धर्म संम्बन्धी कर्म है जीवितों की आद्धू पद्धति अद्यपर्यन्त वल्क आर्यसमाजियों में भी न बनी और न कपी देखने में आती और न कभी जीवितों का आद्धू होना कहीं देखने में आता है। तथा

आद्व कर्म की पद्धतियें जिन ब्राह्मणग्रंथ मंत्र तथा औत गृहसूचों से बनी हैं उन सबों में मृतकों का ही आद्व सिद्ध है । इस लिये जीवितों का आद्व कहना निर्मूल केवल हठ मात्र है ॥ अब इस विषय को सिद्ध करने के लिये प्रथम मंत्र संहिता ( वेद ) के ही प्रमाण दिये जाते हैं । सचेत होकर सुनो ।

अथर्ववेद कां० १८ अनु० २ मंत्र ४८ ॥

“उदन्वतीद्यौरवमापीलुमतीतिमध्यमा ।

तृतीयाहप्रद्यौरितियस्यां पितरभासते” ॥

अर्थ-ब्रह्मापड के तीन लोकों में बीच का अन्तरिक्ष ( भुवः ) लोक कहाता है इस मध्य लोकके मंत्र में तीन भाग किये [ उदन्वती द्यौरवमा ] सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि ऊपोतिर्यों का प्रकाश जिसमें फैलता है इब लिये यह ( अन्तरिक्ष द्यौ ) कहाता है । उस में पृथ्वी की ओर का भाग जल वाला अर्थात् अंतरिक्ष ( आकाश ) में जो नीलापन छाया हुआ हीखता है यह बूझम जल है इस जल वाले अन्तरिक्ष भाग का नाम “उदन्वती द्यौ” है । ( पीलुमतीति मध्यमा ) और जल से ऊपरी आकाश का मध्यम भाग “पीलुमतीद्यौ” कहाता है । और ( तृतीयाह प्रद्यौरिति ) [ सब से ऊपरी अन्तरिक्ष का तीसरा भाग सूर्यादि के प्रत्यर प्रकाश वाला होने से “प्रद्यौः” कहाता है ( यस्यां पितर आंसते ) इसी “प्रद्यौ” नामक अन्तरिक्ष के तृतीय भाग में पितृ-

देव रहते हैं । प्रिय महाश्याय जी । इन्हीं पितरोंका आद्ध्र होता है । मंत्र में कहे तीसरे आकाश में रह-ने वाले स्थूल देहधारी जीवित पितर सिद्ध नहीं हो सकते । स्थूल देहधारी पितर पृथ्वीमें रह सकते हैं तृतीय आकाश में नहीं । इससे जीवितों का पितर होना और उनका आद्ध्र मानना दोनों अंश खण्डित हो जाते हैं । हमारा पक्ष केवल यह नहीं है कि हम मृतक का ही आद्ध्र सिद्ध करें किन्तु हमारा मुख्य पक्ष यह है कि स्थूल देहधारी अपने विद्यमान माता पितादि की सेवा का नाम आद्ध्र नहीं है । जीवित और मृत शब्दों में कई कुतर्क हो सकते हैं जो मृत हैं वो भी जीवित हैं और जो जीवित हैं वे भी मृत हैं । क्योंकि जो मरे हैं वे कहीं न कहीं किसी योनि में जन्म लेकर जीवित कहे जा सकते हैं । देव तथा पितरों की भी योनि हैं उन में जीवित कहना बन सकता है । और जो मनुष्यादि जीवित हैं वे भी पूर्व जन्मान्तर में मर चुकने से मृत कहे जा सकते हैं । मृत शब्द की भाषा मुर्दा नहीं है क्योंकि मुर्दा शब्द का संस्कृत शब्द है । इस लिये शब्द नाम मुर्दा शरीर का आद्ध्र करना शास्त्रों का सिद्धान्त नहीं । मुर्दों का आद्ध्र कहना उन कुतर्कों लोगों का प्रलाप मान्ना है । आत्मा वा क्षेत्रज्ञ न मरता है न जन्म लेता है किन्तु भूतात्मा मरता जन्मता है इस लिये [ अथा मृताः पितृषु सम्भवन्तु । अथर्व० १८ । ४ । ४८ ॥ ]

मरे हुए प्राणी ( भूतात्मा ) पितृ योनि में उत्पन्न हों। इस अर्थवर्वद के प्रमाण से भी सिद्ध है कि मृत नाम मुद्रा का नहीं किन्तु भूतात्मा का है। शुभ अशुभ जन्म भरण भूतात्मा के होते हैं यह अंश मैत्र्यु पनिषद् के तृतीय प्रपाठक में अच्छी तरह से वर्णन किया है। यदि मृत शब्द का भाषानुवाद कोई लोग करते हैं तो यह उनको समझ है किन्तु शास्त्रानुकूल नहीं है। इस लिखने से मेरा प्रयोजन यह है कि यदि कोई कुतकीं हमको पकड़े ( कि जो लोग पितादि मर गये उन्होंने किसी योनिमें जन्मले लिया तो वे जीवित हुये उन्होंने का आँख तुम करते मानते हो इस लिये जीवितों का ही आँख तुम ने भी माना वा मान लिया ) इस लिये इस कुतर्क को पहिले से ही निर्मूल काट देने के लिये हम अपने साध्य पक्षस्थ प्रतिज्ञा का स्पष्ट व्याख्यान कर देते हैं कि हम उन पिता मातादि का आँख शास्त्रानुकूल मानते हैं और करते हैं कि जिस भौतिक शरीर से वे हमारे माता पितादि कहाते थे उस शरीर को छोड़कर अन्य किसी योनि में 'परिणत ( प्राप्त ) हो गये हो। यही उनका मरना वा मृतक कहाना है ॥

तथा—मंत्रसंहिता शु० यजुर्वेद श० १८ । ६०  
मंत्र में अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त दो प्रकार के पितर लिखे हैं। यथा—

येऽग्निष्वात्तये अनग्निष्वात्ता मध्येदिवः  
स्वन्यामाद्यन्ते ॥ यजु० १६ । ६० एव

ये अग्निदग्धाये अनग्निदग्धा मध्येदिवः स्व-  
धया माद्यन्ते० ॥ ऋग्वेद मण्डल १० सू० १५  
मं० १४ तथा अथर्व० १८ । २ । ३५

जपर लिखे पतों पर उक्त मन्त्र वेद की तीन संहिताओं में है, यजु० संहिता में ( अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त ) पद हैं उन्हीं दो पदों के स्थान में (अग्निदग्ध अनग्निदग्ध) पद ऋग्वेद अथर्ववेदमें लाये गये हैं ( मध्येदिव स्वधया माद्यन्ते ) इत्यादि पाठ तीनों वेदों में एकसा ही है इससे सिद्ध होता है कि ऋग्वेद तथा अथर्व० में जिनको (अग्निदग्ध अनग्नि-  
दग्ध) कहा है उन्हीं को यजु० में ( अग्निष्वात्त अन-  
ग्निष्वात्त ) कहा है । क्योंकि ऋग्वेद तथा अथर्व० में  
अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त शब्द उन मन्त्रों में नहीं  
आये तथा अग्निदग्ध अनग्निदग्ध पद यजु० में नहीं  
आये इस से सिद्ध होता है कि अग्निष्वात्त और अ-  
ग्निदग्ध का तथा अनग्निष्वात्त और अनग्निदग्ध का  
एक ही अर्थ है ॥

पाणिनीय च्याकरण के अनुसार इन शब्दों का अर्थ  
यह है कि—

“अग्निना + स्वादिताः = अग्निष्वात्ताः । अग्नि-  
ना + दग्धाः = अग्निदग्धाः ।

जलाते हुए अग्नि ने जिनका स्वाद ले लिया वा  
अग्नि ने जिनको जलाया वे पितर अग्निष्वात्त वा अ-  
ग्निदग्ध कहाते हैं । इसी प्रकार तृतीया समाप्तमें वेदों में-

लिखा अन्तोदात्तस्वर[ याथघञ्जत्ताजवित्रकाणाम् ॥  
पा० ई । २ । १४४ सूत्र ॥ ( गत्यादिभ्यः परेषां यादि-  
प्रत्ययान्तानामुत्तरपदानामन्त उदात्तो भवति ॥ ) ]  
इस सूत्र से सिद्ध होता है । सूत्रार्थ यह है कि—गति  
कारक और उपपदसे परे य, अथ, घञ्, त्त, अच्,  
अप्, इत्र, और क प्रत्ययान्त उत्तर पदों को अन्तो-  
दात्त हो, इससे अग्निकरण कारक से परे ज्वात्त अग्नी-  
र दग्ध इन त्त प्रत्ययान्त उत्तर पदों को अन्तोदात्त  
स्वर हुआ है । यद्यपि ऐसी दशा में जब कि पाणि-  
नीय व्याकरण के अनुसार तथा संहिताओं के पर-  
स्पर मेल से अग्निज्वात्त पद का अर्थ सिद्ध होगया  
कि जो अग्नि से जलाये गये वही पितर अग्निज्वात्त  
तथा अग्निदग्ध हैं तब हमको अन्य प्रमाण की अ-  
पेक्षा नहीं । तथापि ( अधिकस्याधिकं फलम् ) के  
अनुसार शतपथ ब्राह्मण वेद का भी प्रमाण देते हैं ।

"यानग्निरेव दहन्त्स्वद्यति ते पितरोऽग्निज्वा-  
त्ताः ॥ शतपथ ब्रा० २ । ५ । २ । ३ ॥ "जर्यात्—जला-  
ता हुआ अग्नि ही जिनका स्वाद से लेता है वे पि-  
तर अग्निज्वात्त कहाते हैं । इस शतपथ ब्रा० वेद के  
प्रमाणसे भी सिद्ध हो गया कि मरने पश्चात् जो अ-  
ग्नि से जलाये गये वे ही मृत पितर पितृ यज्ञ वा आ-  
द्ध में लिये जाते हैं, मरने परही मनुष्य के शरीर  
अग्नि से जलाए जाते हैं, तथा जो जलाए गये वे  
जीवित नहीं रह सकते हैं इससे आद्ध में मृत पितरों

का ही ग्रहण मन्त्र संहिता के प्रमाणों से सिद्ध हो चुका । ऋग्वेदादि भाग भूमिका पुस्तक के पितृयज्ञ प्रकरण में स्वामीदयानन्द जी ने अग्निष्वात् शब्द का अर्थ यह किया है कि "अग्नि को अच्छे प्रकार जिसने ग्रहण किया है वे अग्निष्वात् कहाते हैं" । यह अर्थ संहिताओं के परस्पर मेलसे तथा शतपथ ब्राह्मण से और पाणिनीय व्याकरण इन तीनों से विरुद्ध है । उक्त स्वामीजी की प्रतिज्ञा उसी भूमिका पुस्तकमें यह थी कि महीधरादि भाष्यकारोंका किया हुआ वेदार्थ शतपथादि से विरुद्ध है और हमारा किया अर्थ शतपथादि ब्राह्मण भाग के अनुकूल होनेसे सर्वथा ग्राह्य होगा सो वह प्रतिज्ञा अब निर्मूल हो गई, स्वमुखसे स्वात्मशलाघा करनी मानो विद्वत्ताको शर्मना है स्वामीजीकी सत्यप्रतिज्ञाकी, एवं संस्कृत में विद्वत्ता की और सत्यवादीपने की तो बात ही क्या कही जाय ! आपतो पूर्ण संस्कृतज्ञ, सत्यवादी और पूर्ण त्यागी महर्षियों में मुकुट ये इसीलिये तो आप ऋषिजीकी सेवा में"आधुनिक महर्षिकी पोल" नामक एक टैक्ट भेट की गई है कि जिस में आप श्री की विद्वत्ता का पूरा २ गान किया है अस्तु तात्पर्य यह कि स्वाठा द० जी का किया अग्निष्वात् शब्दका अर्थ शतपथ ब्राह्मण से, संहिता से तथा पाणिनीय व्याकरणसे विरुद्ध वा अशुद्ध अवश्य है जिसका समाधान वर्तमान आध्यमन्यों

में से कोई भी नहीं कर सकता और जो कोई गिरा पड़ा समाधान करेगा वह युक्ति प्रमाणों से अवश्य कट जायगा और अग्निष्वात्त तथा अग्निदग्ध आदि संहिता के मन्त्रों से मरे हुए पितरों का आद्वापूजन होना अवश्य सिद्ध है जिसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं । मनष्यके मरने पर दो प्रकार की क्रिया होती है । एक तो मरे हुए मुर्दा को अग्नि में जला देना द्वितीय दो वर्षके भीतर जिन बालकों को वा कुषादि ( कोड़ ) रोग वालों को वा जिन संन्यासी आदि के लिये शास्त्र में अग्निदाह नहीं कहा है उन को तथा जिनका अग्निदाह किसी खास कारण से न हो सके उन सबको जल वा बन में फेंक देना वा खोद के गाढ़ देना यह दो प्रकार की क्रिया होती है । ये सब अनग्निष्वात्त वा अनग्निदग्ध कहाते हैं । ( अनग्निदग्ध ) वा ( अनग्निष्वात्त ) का यह अर्थ होगा कि जो २ अग्नि से नहीं जलाए गये । उनके विषय में वेद का यह मन्त्र प्रमाण है कि अर्थवृ० कां० १८।२।३४॥ येनिखातायेपरोप्ता येदग्धायेचोद्गृह्णिताः ।  
सर्वांस्तानग्नुआवह पितृन्हविषेअत्तवे ॥

अर्थ—मरने पर जिनको खोदके गाढ़ दिया, जो बन वा जंगल में छोड़ दिये गए, जो अग्नि में जलाए गए तथा जो युधिष्ठिरादि के तुल्य इसी शरीरसे स्वर्ग को चले गए, है । अग्निदेव उन सब पितरों को हविष खानेके लिये इस आद्वादि पितृकर्ममें उलालो ।

इस मन्त्रके निर्विकल्प सीधे अज्ञातरार्थसे स्पष्ट ही चिद्ध है कि मरने पश्चात् ही पृथ्वीमें गाढ़देना आदि हो सकता है इस से आद्ध में मृत पितरों का आवाहन करना चिद्ध है । वर्तमान पार्वणादि आद्धोंमें—

**आयन्तुनः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः प-  
थिभिर्देवयानैः० ॥**

अग्निमें जिनका दाहकर्म होचुका है ऐसे सोम गुणों वाले हमारे पितर देवयान अन्तरिक्ष मार्गसे इस आद्ध में आयें । इस मन्त्रके अर्थसे भी मरे हुए पितरोंका आद्ध चिद्ध है । तथा—

**ये पूर्वापरागतोऽपराः पितरश्च ये । तेभ्यो  
घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ अथर्व०  
काँ० १८ अनु० २ । मं० १२ ॥**

अर्थात् पूर्व जो गये और जो जा रहे हैं उन पितरोंके लिये घृतकुल्या शतधारा होकर प्राप्त होवें । यहां मृतकआद्ध निन्दकोंसे पूछना चाहिये कि वे यह तो बतावें कि उक्त मन्त्र में वो आपके कौन जीवित पितर हैं जो पूर्व चलेगये और जा रहे हैं ? और किस तरहसे आप उन चलेगए पितरोंको घृत की आहुतियें दे सकते हो ? क्योंकि वे तो गए और आहुति लेने वाला तो जब समक्षमें अर्थात् सामने हाजिर होता है तब ले सकता है सो तो उक्त मन्त्र के “ये पूर्वापरागता” इस पत्ति में वर्तमान क्रिया है ही नहीं वहां तो पूर्व चलेगये पितरोंका जिकिर

है-फिर श्राप किस रीति से उन श्रापके चले गये जी-वित पितरों को घृतकी आहुतियें देकर मन्त्रको सार्यक करोगे ? नहीं तो इस वेद मन्त्रको प्रक्षिप्त (यानी किसी ने मिला दिया होगा ऐसा भठा) मानो। तथा—

इदं पितृभ्यो नमोऽस्त्रद्य ये पूर्वासो यउ-परोस ईयुः । ये पार्थिवे रजस्यानिषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥ ऋग्वेद अष्टक ७ अध्या० ६ वर्ग १७ भरडल १० अनुवाक १ सूक्त १५ मंत्र २ । शुक्रयजुर्वेद अध्याय १६ मंत्र ६८ ॥ कृ० यजु० कां० २ प्रपाठक ६ अनु० १२ मं० ६ ॥

अन्वयार्थः—ये ( पूर्वासः ) पूर्वेष्टिरः ( ईयुः ) स्वगंप्राप्ताः, ये च ( उपरासः ) उपरतव्योपाराः कृ-तकृत्याः सन्तः परं प्राप्ताः, यद्वाये (पूर्वासः ) यज-मानोत्पत्तेः पूर्वमेवोत्पन्ना ज्येष्ठश्रातृपितामहादयः, येच (उपरासः ) यजमानजन्मते उपर्युत्पन्ना कनि-षुभ्रातृस्वपुत्रादयः ( ईयुः ) पितृलोकं प्राप्ताः, ये-प्यन्ये (पार्थिवे रजसि ) पुणिवी संबन्धिनि रजोगु-णकार्यैऽस्मिन् पितृयज्ञाल्ये कर्मणि ( आनिषत्ताः ) हविः स्वीकर्तुमागत्योपविष्टाः, ये या(सुवृजनासु) \* धनस्तमृद्धया आद्वादिकमंपरासु (विक्षु) वन्धुङ्गपासु प्रजासु (नूनं) निष्पयेन (आनिषत्ताः) आद्वादिस्वी-कारायागत्योपविष्टाः, तेभ्यः सर्वेभ्यः पितृभ्यो (अ-

\* „ वृज्यते-परित्यज्यते दारिद्र्यमनेनेति वृजनं धनं तत् शोभनं यासां ताः सुवृजनाः, तादृशीयु“ इति सायण ।

य) अस्मिन् पितृयज्ञाख्ये कर्मणि ( नमोऽस्तु ) आ-  
यमाहुतिप्रदानपूर्वको नमस्कारो भवतु ॥

भाषा—(ये पूर्वासः) जो हम से पूर्व हुए ज्येष्ठ  
भ्राता, पिता, पितामह आदि पितर और जो (उ-  
परासः) हमसे पश्चात् हुए कनिष्ठ भ्राता बन्धु आदि  
(ईयुः) मरकर पितृलोकको ग्राम हुए हैं, और जो  
(पार्थिवे रजसि) पृथिवी संबन्धी रजोगुणयुक्त इस  
पितृयज्ञरूप कर्म में ( आनिषत्ताः ) आदृश्य रूप से  
हृषिः ग्रहण करने को उपस्थित हुए हैं, और जो (सु-  
बृजनासु विक्षु ) आद्व कममें निष्ठावाले बन्धुवर्गमें  
(नूनं) निश्चय कर (आनिषत्ताः) आद्वके स्वीकारार्थ  
उपस्थित हुये हैं, तिन सब पितरों के प्रति (अद्य)  
इस आरब्ध पितृयज्ञ कर्म में आहुति ग्रादनपूर्वक  
मेरी नमस्कार होय तथा—

“आच्याजानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञम-  
भिगृणीत विश्वे, माहिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो,  
यद्व आगः पुरुपता कराम,”। ऋग्वेद अ० ६ व०  
१८ मण्ड० १० अनु० १ सूक्त १५ अष्ट० ७ मन्त्र ६  
शुक्र यजुर्वेद अध्या० १६ मन्त्र ६१ ॥

आन्वयार्थः—हे विश्वे सर्व पितरः, यूर्ध्वं (जानु-  
आच्य) वामजानु भूमौ पातयित्वा ( दक्षिणतो नि-  
षद्य) दक्षिणपाश्वं उपविश्य इममस्मदीयं यज्ञं (आ-  
भिगृणीत) साधुरुद्यं यज्ञ इत्येवमभिष्टुत अपिच्च  
( चः ) युष्माकं, यत्किञ्चिद् ( आगः ) कर्मवैगुण्य-

जनितमपराधम् ( पुरुषता ) मनुष्यत्वेन हेतुना ( करा॒म ) वर्यं कृतवन्तः, हे पितरः तेन केनचिदपराधेन ( नः ) शस्मान् मा ( हिंसिष्ट ) वधिष्ठ ।

भाषार्थ—हे (विश्वे) निखिल पितरो ! आप(जानुश्चाच्छ) बाम जानु यानी बायें घोंटु को भूमि पर निपात (खोर लगाकर) कर (दक्षिणतः निषद्य)इस अग्नि से दक्षिणकी ओर स्थित होकर ( इमं यज्ञम् ) इस हमारे यज्ञ को [ अभिगृणीत ] स्तवन यानी अंगीकार कीजिये, और [पुरुषता] चाऽचल्य स्वभावरूप मनुष्यपते से, आपका [यद् आगः] [ कराम ] जो कुछ कर्म वैगुण्ययुक्त [अथति इस यज्ञ कर्म में कुछ कमी वा चुटि होजाने रूपी] अपराध किया हो तो तिस किसी अपराध से [नः] हमको [माहिंसिष्ट] हिंसन मत करो । इत्यादि ।

दिग्दर्शन भाव दिखाये इन वेदमंत्रो द्वारा मृत पितरों के ही निमित्त आद्वादि यज्ञ कर्मों में पितृ-शोक के अधिष्ठात्री देवों का आवाहन—नमस्कारादि स्तुति और पूजन सिद्ध है । तथा—

“तिरङ्गव वै पितरो मनुष्येभ्यस्तिर इवैतद्वति” ॥ शतपथ ब्रा० २ । ३ । ४ । २१ ॥

अर्थात्—पितर लोग मनुष्यों से अदृश्य होते हैं और पितरों का भोजन भी अदृश्य सूढम होता है । इस कथन से भी सिद्ध है कि स्थूल देहधारी पितर होते तो अदृश्य नहीं कहे जाते । इसलिये पिरण्डदा-

न संबन्ध में अदृश्य पितर कहने से वे ही प्राण श-  
रीरी वायुकाय सूहम अदृश्य पितर लेने हैं। इस से  
भी जीवितों का खण्डन तथा मृत पितरों का आद्व  
चिद्ध है। तथा—\*शतपथ ब्राह्मण में पितरों के लिये प्र-  
त्येक महीने में एक बार और मनुष्यों के लिये प्रति  
दिन सायं प्रातःकाल दोबार भोजन प्रजापति ने  
नियत किया। यदि जीवित पितरों को मानें तो वे  
मनुष्य ही हुए तब बताओ कि वे ऐसे कौन मनुष्य  
हैं जो महीने में एक बार अमावास्या के दिन ही  
भोजन करते हों? ऐसा मनुष्य कोई न हो सकने  
के कारण मनुष्यों से भिन्न भरणानन्तर पितृयोनि  
गये पितर ऐसे समर्थ होजाते हैं—जिनको महीने भर  
में एक बार ही भोजन मिलने से तृप्ति रहती कष्ट नहीं  
होता। इससे भी मृतकों का आद्व चिद्ध है।

शांखायन श्रौतसूत्र पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण  
में ”न जीव पितुरस्त,” अ० ४ क० ४ सू० ७ ॥

अर्थात्—जिसका पिता जीवित हो वह पिण्ड  
पितृयज्ञ न करे उस के लिये पिण्डपितृ यज्ञ नहीं  
है। इस प्रमाण से भी जीवित का नियेध करने से  
मरे पितरों का आद्व अर्थापत्ति से चिद्ध है। अर्थात् जि-  
सका पिता जीवित हो वह आद्व न करे तो यह आ-  
या कि जिसका पिता मर गया हो वह पिण्डपितृ

\* शतपथ ब्रा० का० २ प्रा० ३ मा० २ श्रीरङ्गे संब्र स्प-  
ष्ट रूप से आगे अध्याय ५ में वर्णन किये गये हैं वहां देखो॥

यज्ञ करे तथा शाकायन औत सूत्र शाकमेध पर्वस्थ  
महापितृयज्ञ प्रकरण अ० ३ कं० १६ सूत्र २ ।

[ पितृभ्यो वा सोमवद्वयः पितृभ्योवर्हिष्य  
दुभ्यः पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभयः ] ।

सोमवान्, वर्हिष्य और अग्निष्वात् इन तीन  
नाम वाले पितरों के लिये महापितृयज्ञ में भाग  
दिये जाते हैं । इन में अग्निष्वात् पितर बोही हैं जो  
मरणानन्तर अग्निदाह को प्राप्त हुए । इस से भी मृत  
पितरों के लिये आद्व होना सिद्ध है तथा पिण्डपितृ  
यज्ञ प्रकरण कात्यायन औत सूत्र २३ अ० ४ कं० १ ।

[ प्रेतेभ्योददाति ]

प्रेत नाम मरे हुए पिता पितामहादि के लिये  
पिण्ड देता है अर्थात् देने चाहिये । अर्थापत्ति से आया  
कि जीवितों के लिये नहीं । इस से भी मरे हुओं के  
लिये पिण्डदान देना सिद्ध है तथा आपस्तम्ब औत  
सूत्र पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण ।

यदि जीवितपिता न दद्यादा हीमातृत्वा  
विरमेत् ॥

यदि जिसका पिता जीवित हो वह पिण्डदा-  
न न करे तो होम पर्यन्त ही पिण्ड पितृ यज्ञ करके  
ठहर जावे । इससे भी मरे हुओं के लिये पिण्डदान  
सिद्ध है । तथा मानव कल्प सूत्र में लिखा है कि ।

यदि दद्यादु येभ्य एव पिता दद्यात् तेभ्यो  
दद्यात् ॥

जिसका पिता जीवित हो वह यदि पिण्ड देवे तो जिन पितामहादि मरों के नाम से पिता देवे उन्होंके लिये पुत्र भी पिण्डदान करे अर्थात् अपने जीवित पिता के नाम से पिण्डदान न करे । इससे भी मरे हुए पितादि के लिए पिण्डदान चिढ़ है ।

तथा—यजुर्वेदीय कठ शाखा के काठक श्रीत सूच में लिखा है कि—

“पिता पुत्रौ चेदाहितारनी स्यातां येभ्यः  
पिता तेभ्यः पुत्री दद्यात् । पिता प्रेतः स्यात् पि-  
तामहो जीवित् पित्रे पिण्डं निधाय पितामहा-  
त्पराभ्याम् द्वाभ्यां दद्यादिति ॥

यदि पिता पुत्र दोनों ने विधिपूर्वक श्रीत समाजी अग्नियों का स्वापन किया हो तो ग्रत्येक अमावास्या के दिन दोनों को पिण्ड पितृष्ट फरना चाहिये । इस दशा में जिन तीन के नाम से पिता पिण्डदान करे उन्हींके लिये पुत्र भी पिण्ड देवे किन्तु पुत्र अपने जीवित पिता के नाम से पिण्डदान न करे । और यदि पिता मर गया हो पितामह (दादा)जीवित हो तो पुत्र को चाहिये कि पिता के नाम से पिण्डदान देके जीवित पितामह (दादे) को कोड़ उपसे पूर्वके प्रपितामह वृद्ध प्रपितामह दोनों के लिये पिण्डदान देवे । यह विषय ऐसाही उपोक्ता का त्यों गनु० अ० ६ प्रती० २२० । २२१ से भी तिला

है जिस से सिद्ध है कि मृत पितादिके लिये पिणड-दान होता है इसीका नाम आद्व है । प्रयोजन यह कि प्रमाणां से तो अच्छी प्रकार सिद्ध है कि “आद्व” भरे हुए पितादिका होता है जीवितों के सत्कारका नाम “आद्व” किसी ग्रंथ से कदापि सिद्ध नहीं हो सकता है, इत्यलभ् विद्वत्सु ॥

इति श्री श्राद्धपितृमीमांसोधां मृत पितृणा-  
मेव श्राद्ध सिद्धि प्रदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥

## ॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

सभाजी—श्री परिणडतजी महाराज ! मृतकोंकी आद्वसिद्धि में ये अत्यन्त प्रबल, शास्त्रप्रमाण और सद्युक्तियां सुनकर अब मेरे हृदयके संशय रूप कपाट खुल गये हैं और मुझे दृढ़ विश्वास हुआ है कि “आद्व” मृतकों का ही होता निःसंदेह सत्य एवं वेदानुकूल है । इसलिये हम—अब इन आपके दिये शास्त्र प्रमाण रूप शस्त्रोंको लेकर अपने श्रार्थसमाजी महाशयोंको अविद्या-हठ और पक्षपात रूपी महाशत्रुओंके पक्षेसे लुड़ाने की एवं वेदोक्त सन्मार्ग पर लाने की यथासंभव कोशिश करते रहेंगे । परन्तु हे परिणडतजी ! मुझे यह तो बताओ कि पिता पुत्र का संबन्ध शरीरों के साथ है वा जीवात्मा के साथ ? । यदि शरीर के साथ मानो तो यह शरीर यहीं जला दिया राख भस्म होकर भट्टी में मिल

गया अर्थात् रहा ही नहीं उस शरीर रूप पिताका आद्व पुत्र करही नहीं सकता । और जीवात्मा किसी का पिता वा पुत्र होता ही नहीं । क्योंकि जैसे जीवात्मा न स्त्री न पुरुष और न नपुंसक होता [श्रुतिः-नैव स्त्री न पुमानेष नचैवायं नपुंसकः०] वैसे ही वह किसीका पिता वा पुत्र भी 'नहीं' होता । फिर तुम पिण्डदान का फल किस को पहुंचाते हो ? । अर्थात् मरने पश्चात् उस २ पितादि को सुख पहुंचाने के लिये आद्वकरना व्यर्थ समझा जाता है ।

सनातनी—मिथ महाशश्यजी ! क्या गुरु शिष्य पिता पुत्रादिका संबन्ध नहीं मानते ? यदि मानते हो तो शरीर के साथ वा जीवके साथ, किस के साथ मानते हो ? यदि कहो कि हम मत्यस्त विद्यमान संबन्ध मानते हैं मरने पश्चात् किसी के साथ नहीं मानते तो यह बताओ कि स्वा० दयानन्द को स्वर्गवास हुआ कहने में प्रसन्न और नरक हुआ कहने में अप्रसन्न क्यों होते हो ? तथा स्वा० द० को कोई बुरा कहे वा लिखे तो उसके साथ लड़ने को तथार क्यों होते हो ? क्योंकि स्वा० द० का शरीर भस्म हो के पंचतत्व में मिल गया उसके साथ तुम्हारा कोई संबन्ध हो ही नहीं सकता रहा जीवात्मा सो जैसे वह किसी का पिता वा पुत्र नहीं वैसे ही वह किसी का गुरु वा उपदेशक भी नहीं ठहर सकता । इसलिये

तुन को त्वार दयानन्द का कभी नाम भी नहीं लैना चाहिये । और यदि तुम अब उन की प्रश्नसा में सन्तुष्ट प्रश्न होते और उन को बुरा कहने वाले पर अप्रश्न होते हो तो तुम्हारे मन से ही मरे जीवोंके साथ संबन्ध सिद्ध हो गया । यह उत्तर तो वैसा ही है जैसा प्रश्न था अब आगे आप जिज्ञासु महारथ को तत्त्वांश समझाने के लिये इसी अंश पर कुछ विचार लिखते हैं वह प्रश्नका समाधान भी होगा और शास्त्रानुकूल सिद्धान्त ज्ञान का हेतु भी होगा । परन्तु इस गहन विषय को आप पूर्ण ध्यान लगाकर धैर्य से सुनेंगे तो आशा है कि आप शीघ्र ही इस उच्च सिद्धान्त को ठीक २ समझ कर पूर्ण लाभ ले सकेंगे ॥

“जीव वा जीवात्मा क्या है” इस विषय पर अनेक विचार अंशों में मिलते हैं जिनका व्याख्यान यहां छेड़ा जाय तो एक यही बड़ा व्याख्यान चल जावे । इस लिये अधिक शास्त्र सम्मत सिद्धान्त जो वास्तव में वेदानुकूल है वही यहां कहते हैं कि—

वेदके (द्वासुपर्ण०) मन्त्रमें दो आत्मा कहे हैं इन दोनोंमें (अनश्वन्यो अभिघाकशीति) जो शुभाशुभ फल सुख दुःख भोग न करता हुआ केवल प्रकाश करता साक्षीरूपसे स्थित है जिसके लिये उपनियदोंमें (साक्षी-चेता केवलो निर्गुणश्च) इत्यादि कथन लिखा गया है । यो जैसे जपा पुण्यकी छाया (भलक वा शाभास) स्वच्छ फाँच आदि में सभीप होने के कारण पड़ने से

कांच आदि ठीक उसी पुष्पके रंग से रंगा दीखता है। उसी के अनुसार ऊपर लिखा गया साक्षी आत्मा का आभास अन्तःकरणमें पड़ता है। वास्तवमें अन्तःकरण जड़ है पर चेतन के आभास से चेतन ही अतीत हुआ करता है। अपने आभास दूरा अन्तःकरण को सचेत करता है इसी लिये उपनिषदों में इस आत्मा को चेता कहा गया है। इसी चेता का नाम स्वेच्छा है यही साक्षात् ईश्वर परब्रह्म परमात्मा है। श्री गीता में लिखा है कि—“स्वेच्छां चापि भां विद्धि सर्वस्वेच्छेषु भारत!” अर्थात् सब स्वेच्छा रूप शरीरों में स्वेच्छा मुझे परमेश्वर को ही जानो। तथा मनु० अ० १२ में लिखा है कि—

“योत्स्यात्मनः कारणिता तंस्वेच्छां प्रचक्षते ।  
यः करोति तु कर्माणि सभूतात्मोच्यते वुधैः १२  
जीव संज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ।  
येन वेद्यते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥१३॥  
तत्रुभौ भूतस्य एकौ महान्स्वेच्छा एव च ।  
उच्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः” ॥१४॥

अर्थ—जो इस सचेत शरीरसे कर्म कराने वाला है उसको परिडत लोग स्वेच्छा कहते हैं, और जो शुभाशुभ कर्म करता है यह भूतात्मा नाम शरीर कहाता है। तथा शरीर के साथ ही आविर्भूत प्रकट होने वाला जीव संज्ञक तीसरा आत्मा उन दोनों

से भिन्न है । शरीरधारी इसी जीव रूप साधन से शरीर धारण के समय सब मुख दुःख को जानता है । वे दोनों जीव नाम महत्त्व वा बुद्धि तथा क्षेत्रज्ञ पञ्चभूत रूप स्थूल सूक्ष्म शरीर से मिले हुए सब छोटे बड़े शरीरों में व्यायक परमात्मा के सहारे से ठहरे हुए हैं । जैसे सूर्य वा दीपकादि का बाहरी प्रकाश आंखों से दिखवाता है वैसे ही क्षेत्रज्ञ साक्षीरूप से अपनी चेतना द्वारा स्थूल सूक्ष्म शरीर से कर्म करता है । इसी लिये उपनिषदों में ईश्वरको [चेतन-शेतनानाम् ] चेतनोंका भी चेतन कहा है । जाननेका साधन जिससे मुख दुख जानते हैं वही जीव है और जानने वाला वा करने वाला भूतात्मा है । भूतात्मा और शरीर एक ही के नाम हैं । शरीर तीन प्रकार का है—एक स्थूल द्वितीय सूक्ष्म तथा तीसरा कारण शरीर है । यद्यपि प्रत्यक्ष में स्थूल शरीर कर्म करता हुआ दीखता है । परन्तु स्थूल वास्तव में कर्ता नहीं किन्तु सूक्ष्म शरीर मुख्य कर कर्म करने वाला है । स्थूल शरीर का नाम ग्रन्थमय कोष है । प्राणमय और मनोमय कोष का मुख्य संबन्ध सूक्ष्म शरीर के साथ है । मैत्र्युपनिषद् में भूतात्मा ग्रन्थ से इसी सूक्ष्म शरीरका गमनागमन जन्म मरण के साथ माना है । यह सर्वतन्त्र नियम है कि जो पदार्थ जैसा स्थूल दीखता है वह जैसा ही ज्यों का त्यों सूक्ष्म दशा में भी अवश्य होता है । क्योंकि सूक्ष्म से ही सब स्थूल प-

दार्थ वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं और स्थूल के अंदर सूक्ष्म रहा करते हैं। जैसे स्थूल वृक्ष अपने सब अंशों सहित प्रत्येक बीज ( आम की गुठली आदि ) में विद्यमान रहता है और आम आदि के पेड़ ( युर ) में आम के फल और बीज का भी सूक्ष्म कारण विद्यमान है वैसे ही मनुष्यादि के स्थूल शरीरों के भी तर सूक्ष्म और कारण शरीर विद्यमान हैं। यही सूक्ष्म शरीर नामक भूतात्मा देव—मनुष्य और तिर्यग् आदि योनियोंमें जाता है यही देव—पितर बनता है इसीके साथ जीवसंज्ञक महत्त्व भी तिरीभूत दशामें भर्यानन्तर रहता है। सूक्ष्म शरीर के साथ स्थूल शरीर का ऐसा ही संबन्ध है जैसा धी के साथ दूधका है। अर्थात् स्थूल का साररूप धृतके जगह पर सूक्ष्म शरीर है और धृत के निकल जाने पर जो दशा दूध की होती वही दशा सूक्ष्मशरीर के निकल जाने पर स्थूल देह की हो जाती है। और जब तक दोनों मिले हुए हैं तब तक दूध के समान हैं। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर का सार (तत्त्व) है इसकी चिद्धि के लिये छान्दोग्य उपनिषद् में स्पष्ट ही खोलकर लिख दिया है । तद्यथा—

“दध्नः सोम्य मथपमानस्य योऽणिमा स ऊँ  
धर्वः समुदीपति तत्सर्पिर्भवति ॥१॥ एनमेव खलु  
सोम्यान्नस्यमानस्य योऽणिमा स ऊँधर्वः समु-

दीपति तन्मनो भवति ॥ २ ॥ 'अपार्थं सोम्य  
पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदोपति  
स प्राणो भवति" ॥३॥ इत्यादिछान्दोऽग्रण्डाखंण्ड॥

हे सोम्य श्वेतकेतु ! जैसे दही के मध्यने पर जो  
सूदम सार भाग ऊपर आजाता वह घी होता है वैसे  
ही खाये हुए अन्न का जो सूदम सारभाग उदर से ऊ-  
पर हृदयादि में आ जाता है वह मन होता है । इस  
से मन आदि सूदम शरीर स्थूल देहका सार होना स्प-  
ष्ट चिद्ध है । यही सूक्ष्म शरीर देव पितृ आदि यो-  
नियों में जाता है । इसी भूतात्मा नामक सूक्ष्म श-  
रीर के साथ पिता पुत्रादि सब संबन्ध मरणाऽनन्तर  
भी रहता है और सूक्ष्म शरीर में सब अंगोपाङ्ग वैसे  
ही बने होते हैं जैसे स्थूल में हैं । हरएक वस्तु अन्य  
दशा में पहुंचने पर भी अपने संबन्ध को अपनी आ-  
कर्षण शक्तिसे लेंचता है और वह खिंचा हुआ वहीं  
पहुंच जाता है । वैसे ही सूक्ष्म शरीर जहाँ जिस यो-  
नि में जन्म लेता वहां अपने स्थूल शरीर के परमा-  
णुओं को लेंच कर फिर नया शरीर बनाता है । इ-  
त्यादि सब का सारांश यह है कि जीवात्मा कर्मा-  
नुसार स्थूल देह को छोड़ कर सूक्ष्म देहसे कड़ा हो-  
कर अन्य २ योनियों में जन्म लेता है और सूक्ष्म  
शरीर को भी वह जीवात्मा तब छोड़ता है जब कि  
वह संसार की वासना ( अर्थात् वंधन रूप संकल्प  
विकल्प आदि कामनाओं) से निवृत होकर निर्वाण

पद ( भोक्ष को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है । इस लिये हरएक आस्तिक को चाहिये कि अपने वेद शास्त्रों के माज्जानुसार शास्त्रविधि से अपने माता-पिता=गुरु आदिकों के सूक्ष्म शरीरोंसे मुख्य संबन्ध मानकर अवश्य ही उन मृत माणी के सुख प्राप्त्यर्थ और उन की सद्गत्यर्थ यथाशक्ति एवं पूर्ण अद्वासे अन्न-जल आदिसे विभिन्नरूपक सत्कार (आद्व) करना चाहिये । और जब कि [ आत्मावै पुत्र नामाचिऽ ] [ आत्मावै जायते पुत्रः ] इत्यादि श्रुति और [ गर्भो भूत्वैह जायते ] [ भार्या पुत्रः स्वकातनूः० ] इत्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद एकता संबन्ध स्पष्ट दिखाया गया है तो फिर धिक्कार है उन्हों को जो फूट रूप भेद ढालते हुए भी यह कहते रहते हैं कि हम ही माता पितादिके सच्चे सेवक और देश भक्त हैं । बाहरे सुपात्र पुत्र ! और देश भक्तो !! क्या यह दलील देना तो नहीं चाहते हो कि पितादि ने बुरे कर्म किये तो उन को अपने कर्मानुसार ईश्वरव्यवस्था से दुःख मिलना नियत है तब पुत्र यदि उनको दुःख से छुड़ाना चाहता है तो ईश्वर की व्यवस्था नष्ट होगी, ईश्वर की इच्छासे विरुद्ध होगा । यदि तुम्हारी ऐसी दलील है तो जीवित माता पिता गुरु आदि की सेवा शुश्रूषा भी तुम लोगों को नहीं करनी चाहिये । यद्योंकि पिछले जन्म के फर्भों का जैसा २ शुभाशुभ फल ई-

श्वर ने उनको देना नियत किया है उस, ईश्वरीय व्यवस्था में बाधा ढालने वाले तुम क्यों नहीं हुए? ऐसी दशा में जीवित माता पिता की सेवा भी तुम को छोड़ना क्यों नहीं पड़ेगी ? ॥ अर्थात् अवश्य ही इस तुम्हारी दी हुई दलील से जीवित माता पितादि की सेवा शुश्रूषा छोड़ना पड़ेगी । तो फिर बताओ कि आप कैसे माता पितादि के सेवक और देश भक्त हुए ? और क्या अपने मृत पितादिकों की मिलकियत ( धन माल ) के मालिक होने के लिये तो ठीक २ उस मृतक पितादि से संबन्ध मानकर अपने को उसका हकदार बताओ परन्तु उस मृत पितादि के लिये शास्त्र आज्ञा से किंचित् जल और अन्न मात्र दान करने में वहाने और कुतर्क करते हो? बाहरे कृतज्ञ आर्थिभासियो ! अफ़सोस ! और लड़ा !!! देखो तो सही कि अन्य धर्मो मुमलमान बादशाह शाहजहाँ अपने पुत्र औरंगजेब से हिन्दुओं की मातृ पितृ भक्ति की प्रशंसा करते हुए तथा हिन्दुओं के प्रति धन्यवाद देकर यह कहते हैं कि—

“ए पिसर तो अजव मुसलमानी ।

जिन्दगांरा व आव तरसानी ॥

आफरीं हिन्दुआंरा सद्वार ।

मुर्दं गांरा दिहन्द दाय में आव” ॥ ॥ ॥

इत्यएम् विद्वत्सु ॥

इति श्री श्राद्ध-पितृ मीमांसायां मृत संबन्ध निरूपणे तृतीयोऽध्यायः ॥

## अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

समाजी—श्री परिणित जी महाराज ! अब मेरे हृदय के संदेह निवृत्त होते जाते हैं । आपने बहुत अच्छे दंग से एवं धर्म शास्त्रोंके प्रबल प्रभालोंसे मृतकों के साथ [ अर्थात् अपने मृत माता पितादि रूप पितरों के सूदम शरीरोंसे ] संबन्ध होना ठीक २ सिद्ध किया इसलिये मैं आप को अनेक धन्यवाद देकर फिर प्रार्थना रूप में यह भी पूछना चाहता हूं कि कर्मनुसार उच्चनीच योनि में ग्राम उन हमारे मृत पितादि को आद्व कर्म में दिया हुआ पिण्ड-भोजनादि कैसे पहुंचता है ? अथवा उन को आद्व भोजन पहुंचाने वाले वे कौन हैं जिनमें इतनी अलौकिक सामर्थ्य है ?

सनातनी—महाशयजी ! ठीक आपने पूछा है यह प्रश्न इस समय बहुधा समाजी लोग सरल सीधे भोले सनातनियों से पूँछकर फूले अंगों नहीं समाते, अर्थात् इस प्रश्न का पूरा ठीक २ उत्तर व समाधान न होने से कठोर हृदय वाले एवं शास्त्रान्भिज्ञ समाजी भाई उन विचारे आस्तिक एवं कोमल हृदय वाले सनातनियों को क्षण भर में घबरा देते हैं और अपनी जय मान बैठते हैं । अस्तु जो हो ॥ अब आप ध्यान देकर सुनो । जैसे गर्भिणी अबला स्व पुरुष करके दिये गर्भपोषणार्थ अन्न आदि को भक्षण करतः तृप्त हुई आपने उदर गत

गर्भ (वालक) को भी तृप्त करती है और गर्भपोषणोपयुक्त आङ्ग देने वाले को भी प्रत्युपकार रूप फल से संयुक्त करती है अर्थात् उस पुरुष को भी फल भागी करती है । तैसे ही आद्व के देवता जो वसु रुद्र अदिति सुतादि पितर हैं वह आद्व करके तृप्त हुए स्वसंगत पितरों को भी तृप्त करते हैं और आद्व कर्ता को भी स्वर्गादि फल से संयुक्त करते हैं इस अभिप्राय से ही—

**“देवान् वै पितृन् प्रीतान्, मनुष्याः पितरोऽनुप्रीयन्ते, तिस्रा आहुतीर्जुहोति, त्रिनिदधाति, पट् संपद्यन्ते,, ॥४॥**

कृष्ण अजु० आरण्यक अष्ट०१ अध्या०३ अनु०१ ॥

अर्थात् देवता रूप पितरों के तृप्त होने के अनन्तर मनुष्य रूप पितर भी तृप्त हो जाते हैं, इसी से ही प्रथम देवता रूप पितरों के अर्थ तीन आहुति करनी चाहिये और फिर मृत मनुष्य रूप पितरों के अर्थ तीन पिण्ड देने चाहिये, इस प्रकार पट् दं संपद्न होते हैं ॥ तात्पर्य यह कि आद्व के देवता वसु रुद्रादि पितर आद्व कर्म में—

**निमत्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ।  
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथाऽसीनानुपासते १८६  
अध्या० ३ ॥ मनु०**

निर्मित ब्राह्मणों के शरीर में झटुप्पय वायुकाय सूक्ष्म रूप से प्रवेश करके पिण्ड एवं ब्राह्मण भोजनादि के तत्व \* को ग्रहण करं स्वयं तृप्त होके

\* शका—किस प्रकार वे विवृदेव श्राद्ध भोजन के तत्त्व को ग्रहण करते हैं ?

समाधान—यह भी हमारे लिये कुछ आश्चर्य जनक नहीं है क्योंकि जब हम पशु पत्रि कीटों में परमेश्वर प्रदत्त अलौकिक सामर्थ्य को प्रत्यक्ष देख रहे हैं तो वितरोंके प्रति प्रदत्त अलौकिक सामर्थ्य हम को कैसे आश्चर्य जनक होगी ।

आर्यात्—जैसे परमात्मा प्रदत्त अलौकिक शक्ति विशेष से हस्ती ( हाथी ) कपित्थ फल को भद्रण कर उस के अन्तर्गत सारांश को ग्रहण कर जिरलीद के संग यथावस्थित ( जैसे आगे या दैसाही सारा विना अवाया हुआ ) उस फल को निकाल देता है । और जैसे मधुमक्खियां पुष्पों से मकरन्द ग्रहण कर मधुरचना करती हुईं पुष्प के किसी अंश को ह्रास ( तोर ) न कर उस के सारांश रूप सुगंधि की ही ग्रहण कर लेती हैं । वा जैसे जलीका ( जोंक ) निश्चित रक्त में से विकृत रक्त रूप एकांश को ग्रहण कर लेती है । वा जैसे कमल के किसी अंग को भी न घटाता हुआ भमर ( भौंरा ) कमल गर्भ केशर मकरन्द का ग्रहण कर लेता है । जैसे

जल निश्चित दुर्घ ( ज्वीर ) में से हंस पक्षी जल को पृथक् करके केवल तत्य रूप दूर्घ को ही ग्रहण कर लेता है । और इसी प्रकार अंगुली के स्पर्श करने से लज्जावती लता ( शमे छूटी ) में सकुचित होने की शक्ति भी जान लेनी । और अहं लोहे में भी चुंबक के सक्लिधान से अलौकिक शक्ति जाननी । इत्यादि यदि पदार्थों की विचित्र शक्तियों का नि-

फिर उन सृत मनुष्य पितरों को भी तृप्त करते हैं जिन के निमित्त आद्वि किया गया है । और आद्वि करने वाले पुण्यात्मा को भी यथा योग्य स्वर्गादि फल प्रदान करते हैं । इस अभिप्राय को ठीक रसिद्ध करने के लिये श्री योगीयाज्ञवल्क्य मुनि जी ने भी आचाराऽध्यायमें स्पष्ट दर्शाया है दि—

वसुरुद्राऽदितिसुताः पितरः श्राद्ध देत्रताः ।  
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितृन् श्राद्धेन तर्पिताः २६६  
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।  
प्रयच्छुन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः २७०  
वसु तथा रुद्र एवं अदितिसुत, ये तीनों पितर जो आद्वि के देवता हैं वह आद्वि करके तृप्त हुए—मनुष्यों के पितरों को भी तृप्त करते हैं ॥ और आद्वि करने के प्रति भी आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष यथायोग्य सुख प्रदान करते हैं ॥

एवं शंतनुजीने भीष्मपितामह जी के प्रति भी यही समाधान किया है कि—

आप्यारिप्ताश्वते सर्वे पुनराप्यायन्ति ॥

( महाभारते )

रूपण किया जाय तो एक यही शृहत्कथा होजाय, इसीसे इतने में ही सन्तुष्ट होना चाहिये । सारांश यह है कि इस ही प्रकार परमात्मा प्रदत्त अस्त्रौक्तिक शक्ति विशेष से पितर देवता भी आद्वीय पदार्थों के सारांश (तत्त्व) को यहणकरते हैं ॥ इति ॥

सब देवता रूप पितर प्रथम आप स्वयं तृप्त होकर फिर अन्य मनुष्य पितरों को तृप्त करते हैं ।

तथा च—

एते श्राद्धं सदा भुवत्वा पितृन् संतर्पयन्त्युत ।  
यत्र क्वचन् धर्मज्ञा वर्तमोनान्हि योगतः ॥

### विष्णधर्मोत्तर ॥

ये जो वसु रुद्र अदितिसुत, श्राद्ध भोजन से तृप्त होकर फिर मृत पुरुषोंको तृप्त करते हैं वे क्योंकि मृत मनुष्य पितर किसी भी योनि में हों। क्योंकि वह धर्मज्ञ पितृदेव योग बल रूप ऋलौकिक सामर्थ्य से हर सक प्राणी को जानते हैं ॥ इत्यादि धर्मशास्त्रोंके प्रभाणोंसे स्पष्ट चिद्ध है कि हमारे मृत पितर अपने अच्छे वा बुरे कर्मानुसार चाहे वे किंसी भी योनि में क्यों न हों तो भी उन्हों को वहां उसी ही योनि में पितृदेवों के ऋलौकिक सामर्थ्य से पिण्डभोजनादि श्राद्धीय पदोर्थ सूक्ष्म रूप में पहुंच जाते हैं । और जो श्री दशरथ \* महाराजादि जैसे अत्यन्त उत्तम पुण्य कर्मों के प्रभाव से देव पितर श्रादि उत्तम योनियों में गये हुए हैं वे स्वयं अग्निदेवकी सहायतासे वेद मंत्रों द्वारा आहूत होकर श्राद्ध कर्म में निर्मन-

\* यह श्री दशरथ महाराजकी कथा आगे पंचम अध्याय में स्पष्ट रूप से वर्णन की गयी है—जहाँ श्री जानको जी निमन्त्रित मुनियों के देह में अपने इवंशुर दशरथजी का दर्शन करके लक्षित होकर द्विष्ट गई थीं ॥

त ब्राह्मणों के देह में अदृश्य रूप से आकर पिण्डभो-  
जनादि का तत्व (सारांश) ग्रहण करके तृप्त हो जा-  
ते हैं। इस की बिद्धि में वेद का प्रमाण यह है कि-

येऽग्निदग्धा † येऽनग्निद-  
ग्धा मध्येदिवः स्वधया मादय-  
न्ते । तेभिः स्वराङ्गसुनीतिमे-  
तां यथावशं तन्वं कल्पयस्व,  
मंत्र १४ ॥

ऋग्वेद अ० ६ व० १८ मण्ड० १० अनु० १ सू० १५  
अष्ट० ७ ॥ शु० यजु० अध्या० १८ मं० ६० में ( अग्नि-  
वाच्ता० ) यह पद है ॥

अन्वयार्थ.—ये ( अग्निदग्धाः ) इमशानप्रा-  
प्ताः ये च ( अनग्निदग्धाः ) इमशानकृत्यरहितः  
ये च ( दिवो ) द्युलोकस्य मध्ये स्वधया (मादयन्ते)  
तृप्ताश्चरन्ति, हे (स्वराट्) दीप्यमान अग्ने ! ( तैः  
पितृभिः ) तेभ्यः पितृभ्य (असुनीतिभू (प्राणयुक्तां (ए-  
ताम् ) भक्षण योग्या तनूं (यथावश) यथा कामं त्व  
कल्पयस्व ।

† यहा पर जो अग्निदग्ध पद से जीवित पितरो का ग्र-  
एण करें तो उन नहाशयों को अवश्य ही द्वितीय शध्याय  
में उक्त पद की मीमांसा देख फर अपना सम्बद्ध निदृष्ट आ-  
र्ता आहिये ॥

भाषा—हे स्वराट्-दीप्यमान अग्ने ! (ये अग्निदंघाः) जो हमारे पितर अग्नि में दंध हुए शमशान संस्कार को प्राप्त हुए हैं और (येऽनग्निदंघाः) जो शमशान संस्कार को [ संन्यासी होने के कारण वा किसी अन्य कारण से ] नहीं प्राप्त हुए हैं और (दिवोमध्ये) अन्तरिक्ष लोक में वा स्वर्ग लोक में स्वधा मन्त्र संस्कृत अग्नकी प्राप्ति से जो (मादेयन्ते) तृष्ण हो कर विचर रहे हैं (तैः पितृभिः) तिन पितरों के प्रति (असुनीतीम्) प्राणयुक्त (सताम्) हवि भक्षणके योग्यता वाली इस (तनूम्) देहकी कल्पना करो जिससे (यथाकायम्) यथेष्ट यहां आकर हवि भक्षण करें । इस वेदमन्त्र के सीधे २ भाषार्थसे स्पष्ट सिद्ध है कि स्वर्गादि उत्तम लोकों में जो अत्यन्त पुण्यकर्म से गये हैं वे हमारे पितर अग्निदेव की कृपा एवं सहायतासे सूक्ष्म धोभन देह धारण करके यथेष्ट यहां हमारे पितृयज्ञ (आद्व) में आकर हवि भक्षण करते हैं । इसलिये नीचे लिखे वेदमन्त्रों से पुण्यबान् सर्वर्थ पितरों को यज्ञमें यहां बुलाने के लिये तथा मध्यम यानी साधारण पुण्यकर्म से मनुष्ययोनिमें प्राप्त एवं (निकृष्ट) पापकर्मनिःसार पशुपक्षीश्चादि योनिमें प्राप्त असर्वर्थ पितरोंको वहांही उसी योनिमें तृष्ण करनेके लिये वा उन्होंकी उच्चगति करने के लिये आद्वकर्म में अग्निदेव की प्रार्थना पूर्वक स्थापना करके उस में आहुती दी

जाती हैं अर्थात् अन्नीकरण ( अग्न्यारी वा हीम )  
कराया जाता है । सो यथा—

**उशन्तस्त्वानिधीमह्युशन्तः  
समिधीमहि । उशन्नुशुत्त आवह  
पितृन्हविषे अत्तवे ॥ ७० । यजु०**

अध्यां १८ ॥ ७० ॥

मन्त्रार्थ—( उशन्तः त्वा निधीमहि ) हे अग्ने !  
तुम्हारी इच्छा करते हुए हम तुमको स्वापन करते  
हैं ( उशन्तः समिधीमहि ) यज्ञ की इच्छा से तुम  
को प्रज्वलित करते हैं ( उशन्, उशतः पितृन्, ह-  
विषे, अत्तवे, आवह ) चाहते हुए तुम, हवि चा-  
हने वाले हमारे पितरों को द्वंस यज्ञ में हवि भक्षण  
करने के लिये बुलाओ ॥ ७० ॥ और—

**ये चुहे पितरी येचुनेह यां  
पूचे विद्धि यांश ॥ उचुन प्रविद्धि ।  
त्वं वैत्थ्य यत्तिते जातवेदः स्व-  
धाभिद्यन्ते सुकृतज्ञ पस्व । ६७ ॥**

यजु० शं० १८ ॥ ६७ ॥

जो मेरे पितर द्वंस लोक में हैं अर्थात् साधा-  
रण पुण्य वा निकृष्ट कर्मनुशार मनुष्य वा पर्यु

पह्यादि योनि में प्राप्त होकर इस पृथ्वीलोक में रहते हैं । और जो पितर इस लोक में नहीं हैं अर्थात् अत्यन्त उत्तम पुरुष से स्वर्गादि उत्तम लोकों में हैं ( च, यान्, विद्मः च, यान्, न, प्रविद्मः ) और जिन पितरोंको हम जानते हैं, तथा जिन को समरण न होने से नहीं जानते हैं, ( जातवेदः, वे, श्रति, त्वम्, उ, वेत्य, ) है अग्ने ! वह पितर जितने हैं वे तुम हीं जानते हो ( स्वधाभिः, सुकृतं, जुषस्व ) सो पितृयज्ञ द्वारा उन पितरों के तृप्त्यर्थ ओए अज्ञ को सेवन करो, ॥ ६७ ॥

यहाँ “इह,, शब्द से जीते पितरों का ग्रहण नहीं होता किन्तु जिन्होंने कर्मवश इस लोक में देह धारण किया है अन्यथा “ न “प्रविद्म,, इस का शब्दार्थ नहीं घट सकता “विद्म,, शब्द का अर्थ यह है कि जिनको मैं अपना पितर जानता हूँ परन्तु कहाँ हैं यह नहीं जानता हूँ अथवा जिन को जानता हूँ बाप-दादे-परदादे, जिन को नहीं जानता इक्कीस पीढ़ी तक यह तात्पर्य है ॥ तथा-

**यर्मग्ने कव्यवाहन् त्वजिच्-  
न्मन्यसे रुयिम् । तन्नौ ग्रीर्भिः श्र-  
वाय्यन्देवत्राप्नन्या युज्जम् ॥६४॥**

यजु० अ० १० ॥ ६४ ॥

हे पितरों को हव्य पहुंचाने वाले अग्ने ! तुम भी जिस हवि रूप अज्ञको उत्तम जानते हो ( न,

तं, गौर्भिः, अवाच्यं युजस्, देवता, आपनय ) इस लिये हमारे उस वषट्कार आदि वाणियों से सुनने योग्य उचित हवि को पितृ देवताओं के प्रति सब औरसे पहुंचाओ ॥ ६४ ॥

इत्यादि वेदमन्त्रों के आशय से स्पष्ट सिद्ध है कि अङ्गिन देवता भी स्वधारूप अन्नकी आहुतियोंको सूक्ष्मरूप से लेजा कर वहां पितरों के प्रति पहुंचा देता है ॥

समाजी-पणिडत जी महाराज ! यह भी तो सुनाओ कि जब यह किसी को भी मालूम नहीं कि हमारे पितर स्वर्ग में गये वा नरक में तब उन्होंको अन्न वस्त्रादि भेजना क्या बिना पते के पुरुष को ढांक द्वारा वस्तु भेजनेके तुल्य नहीं और ऐसी अवस्था में उन को भेजने के लिये अन्न वस्त्र ब्राह्मणों के हवाले करना और फिर उन की रसीद का न पहुंचना क्या यह सन्देह पैदा नहीं करता कि न जाने यह माल भेजने वालोंने ही खा लिया हो ? इसलिये हमारे पितरों से माल पहुंचने की रसीद न मिलनेसे हमें विश्वास कैरे हो कि ठीक २ उन्हों को मिला ?

सनातनी-महाशय जी ! यह तो मैं पहिले शास्त्र प्रभाणोंसे स्पष्ट सिद्ध करचुका हूं कि हमारे मृत पितर-फर्मानुसार चाहे किसी भी उच्च, नीच, योनि में वा स्वर्ग नर्कमें क्यों न गये हों तो भी पितृलोक के अधिष्ठाता चगु-द्व्य-अदिति शुतादि पितृदेव

एवं अग्नि देवता भी, अपने योगयलसे तथा अलौकिक सामर्थ्य से उन पितरों को जानकर वहां ही उन्होंको तृप्त करते हुए मुखभागी करते हैं। वाकी रही हम लोगोंको पूरा २ विश्वास हो जानेके लिये उन्हों की “रसीद,,। सो यह भी ठीक नहीं क्योंकि आद्वा का संकल्प करते ही समय रसीद लिखी जाती है कि सृष्टिके आरम्भसे वैवस्त्रतादि अमुक २ मन्वन्तर, चतुर्थगो, युग, सबत्सर, तिथि, वार, मुहूर्तादि समयमें, अमुकदेशमें, अमुक वर्ण, नाम गोत्रादि, वाला में पुरुष वा स्त्री अमुक २ गोत्रादि वाले ब्राह्मण को अमुक २ पिता मातादि के निमित्त अमुक वस्तु वा भोजन वस्त्रादि देता हूँ। वहां उस समय बैठे सब मनुष्यों की साक्षी वा गवाही लिखी जाती है। और देवता लोग भी उसमें साक्षी लिखे जाते हैं इसी विचार से मनुजी ने कहा है कि—

मन्यन्तेवैपापकृतो नक्षित्रपश्यतीतिनः ।  
तांस्तुदेवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुपः ॥

मनु० अ० ८ ॥

पापी लोग मानते हैं कि यहां एकान्त में हम को पाप करते कोई नहीं देखता, परन्तु यह भूल है क्योंकि उन को देवता लोग और अन्तर्यामी ईश्वर देखा करता है। जो देवादि पाप के गवाह होते हैं वे ही आद्वादि पुरुषकर्म के भी गवाह हो जाते हैं। वह रसीद आकाशमरणल रूप कागज में वाणीरूप स्थाही से तथा वायुरूप लेखनी से लिखी जाती है।

जैसे फोनोग्राफ के छोटे से आकाशमें थोले हुए शब्द ( राग ) भर जाते हैं वैसे ही आद्वादि के दान की यह संकल्पात्मक रसीद महाकाश में भर जाती है इसीलिये पतञ्जलि नुनि जी ने शब्दों का स्थान आकाश ( आकाशदेशः शब्दः ), को कहा है । आकाश के ही प्रदेशन्तर में स्वर्गादि किसी भी भौतिक आद्वादि दान का सुख सन्तोष प्रसन्नतादि रूप फल जब पितरों को प्राप्त हो जाता है तब यही पाने वाले के उस रसीद पर हस्ताक्षर होते हैं । और जब आद्वा करते ही समय वा करचुकने पर मन वाणी शरीर में वा स्त्री पुत्रादि सब कुटुम्ब में सर्वव्रकुशलता प्रसन्नता आनन्द मंगल दीख पड़े तब यही आद्वफल पाने की हस्ताक्षरी रसीद आगई मान लेना चाहिये अर्थात् जानो उसी आकाश मण्डलस्थ रसीद पर दस्तखत हो आये । और यदि अप्रसन्नता अमंगलादि प्रतीत हों तो मानलो कि सफल नहीं हुआ और रसीद पर दस्तखत नहीं किये तब यजमान तथा आद्वादि भोक्ता ब्राह्मण का शास्त्रमर्यादा से विरुद्ध करना रूप अपराध दोनों वा किसी एक का हो सकता है उस दण्डमें केवल ब्राह्मण का ही अपराध मान लेना भी इकतर्फी डिगरी कर देना है । अभिमाय यह है कि रसीद नाम विश्वास हो जाने का है—यदि विदेश से आई रसीद पर भी विश्वास न हो तो वा सन्देह हो जाय कि अन्य कौसे हस्ताक्षर अन्य भी बना सकता है और फिर पवद्वारा पूढ़ने पर भी उसी की ओर से लिख

सकता है कि हाँ मुझे रु० मिलगये तब विश्वास न हो तो यहाँ की रसीद भी रही जानो और शब्दम्-माण रूप वेदादि शास्त्रों पर जिनका अटल विश्वास है उन को संदिग्धात्मक रसोद की अपेक्षा ( इच्छा वा जरूरत ) ही नहीं है । यदि किसी ऐसे निकट-वर्ती अथवा परम मित्र द्वारा कोई वस्तु समाजों मेंनुष्य अपने जीवित पिता के पास भेजे कि जिस का सर्वांश में पूरा २ विश्वास हो तो वहाँ समाजी कदापि रसीद नहीं मांगेगा और मांगे तो जानो उस घर वा परम मित्र का पूरा २ विश्वास नहीं तब वह घर वा बनावटी भी रसीद पेश कर सकता है । अन्तमें जबतक विश्वास न करो सभी रसीद आदि रही हैं जब विश्वास दृढ़ होगया तब रसीद की आवश्य-कता सनातनधर्मियों को नहीं है । और सर्वशुद्ध स-नातन धर्मावलम्बियों को वेदादि शास्त्रों पर दृढ़ विश्वास है कि इस निम्नदर्शित वेदमन्त्र में अग्नि-देवने हमारे पितरोंको आद्वान्न पहुंचाया । और इसी ही वेदमन्त्र को हमारे पितरों की तरफ से ईश्वर द्वारा आई हुई सज्जी रसीद समझते हैं और यह भी विश्वास करते हैं कि आद्व करने से हमारे पितरों की तृप्ति, तथा निःसन्देह सद्गति होती है । और आद्व करने वाले हम लोगों को भी यथायोग्य धनं पुच्च-स्वर्गादि सुख प्राप्त होता है—यथा सज्जी र-सीद रूप वेदमन्त्र—

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवा-  
ङ्गव्यानि सुरभीणि कृत्वी, प्रादाः  
पितृभ्यः स्वध्या ते अक्षन्नद्वित्वं  
देव—प्रयता हवींषि,,।

ऋ० श० ६ ष० १९ गण्ड० १० अनु० १ सू० १५ अष्ट० ३ मं० १२  
शुक्लपञ्जु० श० १९ नं० ६३॥ कृ॒ यजु० का० २ प्र० २६ अनु०  
१२ मं० ५॥

अन्वयार्थः—हे अग्ने ! त्वमस्माभिः ( ईडितः )  
स्तुतः हव्यानि अस्मदीयानि सुगन्धीनि कृत्वा ( अ-  
वाट् ) अवाक्षीत् प्राप्तवानसि ऊङ्गवा च ( स्वध्या )  
पितृमंचेण पितृभ्यः ( प्रादाः ) दत्तवानसि ते च पि-  
तरस्तद् हविः ( अक्षन् ) भक्षितवन्तः, हे जोतवेदस्त्व-  
मपि ( प्रयता ) पवित्राणि हवींषि ( अद्वि ) भक्षय ।

भाषा—हे अग्ने ! हम करके स्तुत हुये ( त्वम् )  
आप हमारे दिये हुए हव्य को सुगन्धित कर हवन  
द्वारा स्वीकार किया, और स्वीकार कर फिर ( स्वध-  
्या ) पितृप्रिय स्वधा इस मंत्र से हमारे पितरों के प्र-  
ति प्रदान किया है अतः आप करके दिया हुआ जो  
हवि है उस हवि को ( ते ) वे हमारे पितर भक्षण क-  
रते हैं । हे ( जातवेदः ) दिव्यप्रकाशस्वरूप अग्ने ! ( त्व-  
म् ) आप भी इन शुद्ध हवियों को भक्षण करो और—

“उदीरतामवर उत्परास उच्च-  
ध्यमाः पितरः सोऽन्यासः । असुं

**यर्द्युरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु  
पितरो हवेषु ॥** पञ्चवैद वाजसने० अ० १६ सं० ४८ ॥

अन्त्रयार्थः—अवरेऽस्मन् भूलोकेऽवस्थिताः पितर उदीरतामूर्ध्वं लोकं गच्छन्तु । मध्यमा मध्यमस्था अन्तरिक्षस्थाः पितरः उदीरतां परासः परलोकेद्युलोकेऽवस्थिता देवत्वं प्राप्ताः पितर उदीरता ततोऽप्युर्ध्वं व्रह्मलोकादिपु गच्छन्तु । कीदृशाः पितरः सोम्यासः शान्तिशोलाः सोमपानाहा वा । ये च असुमीयुर्वायुरुर्घर्प प्राप्ताः वायुकायाः सूक्ष्मादृशयाः स्थूलविग्रहाः । अवृकाः शत्रुभावरहिताः समदर्शिनः ऋतज्ञाः सत्यज्ञा यज्ञज्ञा वा स्वाध्यायनिष्ठा वाते नोऽस्मान्हवेषु आहूनेषु अवन्तु रक्षन्तु इति प्रार्थयामः ॥

भाषा—(अवरे) इस भूलोक में रहने वाले पितर लोग (उदीरताम्) जपरी स्वर्गलोक को प्राप्त हों (सोम्यासः) शान्तिशील चन्द्रलोक वासी वा यज्ञों में सोमपान करने वाले (मध्यमाः) मध्य-अन्तरिक्ष लोकस्थ पितर (उदीरताम्) जर्धवर्गति को प्राप्त हों और (परासः, उत्) \* स्वर्गलोकस्थ

\* स्वर्गादि लोकों में रहने वाले पितरोंका शरीर वायुकाय सूक्ष्म अदृश्य होता है यह वात उपरोक्त “असुयैयुः” इस वेद वाक्यार्थ से स्पष्ट सिद्ध है कि जिन्होंने केवल प्राणभाव को ही धारण किया है । यहा स्थूल शरीर का स्पष्ट नियेध है ॥

पितर उससे भी ऊपर महलोंकादि को प्राप्त हों—  
वे पितर कैसे हैं कि ( असुं य ईयुः ) जिन्होंने प्रा-  
णमात्र को धारण किया है अर्थात् वायुकाय सूक्ष्म  
अदृश्य शरीर वाले स्थूल मनुष्यादि कासा शरीर  
जिन्हें का नहीं है । ( अवृकाः ) जिन का कोई शब्द  
नहीं ( चृतज्ञाः ) जो सत्य को वा यज्ञ को जानने  
वाले हैं ( ते, पितरः ) वे पितर लोग ( नः ) ह-  
मारी ( हवेषु ) आद्वादि में आवाहनके समय ( अ-  
वन्तु ) रक्षा करें यह हमारी प्रार्थना है ॥

मिय महाशय जी ! इन दो मन्त्रों से स्पष्ट  
सिद्ध है कि अग्नि देयता आद्वकर्म में निमन्त्रित  
आद्वणोंके मन्त्रोन्नारणसे दी हुई पितरों के निमित्त  
आहुतियों को हमारे पितरों के ग्रति वहां पहुंचाके  
आया, और उन हमारे पितरों की क्रमपूर्वक ऊपर  
स्वर्गादि लोकों में गति होना एवं स्वर्गादि लोकों  
में रहने वाले हमारे सामर्थ्यदात् पितर आद्व से  
तृप्त हो कर हमारी रक्षा करना इत्यादि सब  
वातों का विश्वास कराने वाली सज्जी साक्षीरूप  
“रसीद” जब हम को परद्वय द्वारा वेदादि शास्त्रों  
में लिखी मिली है तब हम को संसारी काग़जी  
रसीद की कौनसी आवश्यकता है अर्थात् संसारी  
फागन के रसीद की उन नास्तिकों को आवश्य-  
कता है कि जिन्होंका हमारे वेदादि धर्मशास्त्रों पर  
पिशाच नहीं । इस लिये कहा है कि “नास्तिकों  
वेदनिन्दकः” जिन्हों का वेदशास्त्रों पर विश्वास

नहीं अर्थात् जो वेद की निन्दा करते हैं वेही मनुष्य नास्तिक कहाते हैं इसलिये हम सोगोंको चाहिये कि वेद से दिखाये गये शुद्ध आद्वा को विधिपूर्वक करके अपने मृत पितरोंकी सद्गति करें और वेद की आज्ञाको पालन करके अपने हिन्दू मनुष्यत्व को सार्थक करें यही मेरी प्रार्थना है ॥

समाजी—श्री परिष्ठत जी महाराज ! यह तो बहुत अच्छी न्यायरूप सत्य दलील एवं वेद मन्त्रों के प्रबल प्रमाण से ठीक रविश्वास दायक “रसीद” दिखलाई रहा । अब मुझे दृढ़ विश्वास हुआ लेकिन एक बात और पूछने की है सो यह कि मृतप्राणी अपने किये पाप-पुण्य कर्मों के अनुसार यदि वह पशु, पक्षी वा यज्ञ, राक्षस, पिशाच अथवा देवता होजाय तो फिर आद्वाकर्म में हमारा दिया हुआ क्षीर, घी, हलुआ, लड्डू, पकवान कच्चीड़ी वगैरः पदार्थ उन्होंको कैसे देहानुकूल रचिकर ( मिय ) होंगे ? अर्थात् पशुओं को घास, मिर्चों को मांस, राक्षस-पिशाचों को रुधिर और मांस एवं देवताओं को असृत वगैरः जब अपने २ शरीरों के अनुकूल मिय हैं तब हमारे दिये हुए उक्त लड्डू कच्चीड़ी आदि पूरी पकवानों से उन्हों की कैसे रुचिपूर्वक तृप्ति होगी ? अर्थात् मेरा दिया हुआ सब उन्होंके प्रतिकूल होने से वृद्धा हो जायगा ? ॥

सनातनी—महाश्य जी ! घबराल्लो भत कुछ अपनी भी अङ्ग घा बुद्धि काममें लाग्गो केवल मग्न

करने ही पर सवार न हो जाओ ? महाशय जी सुनो जब कि हमारी अंग्रेज सरकार के राज्यमें भी ऐसा अन्धेर नहीं है कि जब हम लोग, जर्मन-फ्रान्स वा जापान, रशिया वगैरः विलायतोंमें गये हुए अपने मित्र को यदि कुछ रूपया भेज देना चाहें तो क्या येही हमारे एक तोलेके वजन वाले विकटोरिया वा एडवर्ड अथवा शहनश्हाह जार्ज दी फिफ्थ के मुहर ( प्रतिमा ) वाले रूपये वा नोट वगैरह जो यहां पोस्ट आफिस में मनीश्चार्डर करके दिये जाते हैं वो क्या वहां उक्त विलायतोंमें भी हूबहू उसही मुहर वाले रूपये वा उस ही नम्बर वाले नोट हमारे मित्रको मिलेंगे वा उक्त रूपये नोट यहां अन्य बादशाहत होनेके कारण उपयोगी हो सकेंगे ? नहीं कदापि नहीं । क्योंकि जैसा २ देश और जैसी २ राज्य-सत्ता होती है उस के ही अनुकूल रवाज व हुक्म मूलिक उसी ही सिक्के व मुहर के गिनी वा पाउन्ड वगैरह रूपमें हमारे मित्रको मिल जायगे और उपयोगी भी बन सकेंगे तो इसी ही रीति से परग्राम के शटल राज्य में पितॄलोक के अधिष्ठाता वस्वादि पितर यहां श्राद्धमें पोस्टमास्टर रूप ब्राह्मणों के मार्फत हमारे पितरों के निमित्त दिये हुए लड्डू-पूरी-कचौरी वगैरह श्राद्धीय पदार्थ के सारांश को ग्रहण करके हमारे मृतपितरोंके प्रति चाहे किसी भी योनि में पशु, पक्षी, राक्षस, देवतादि

क्यों न हुए हों तो उसी ही योन्यन्तर्गत देहके शुभकूल करके दे देते हैं । इसलिये हमारे ( आप्त ) यानी पूर्ण धर्मात्मा पूर्ण विद्वान् कृषि-मुनियों ने कलिकाल में नास्तिकों द्वारा उठने वाले ऐसे निकम्भे खोटे २ सदालोंको निर्मूल करनेके लिये और आस्तिक जनों को ज्यादा २ सन्तोष वा विश्वास दिलाने के लिये महाभारतादि धर्म इतिहासों में स्पष्ट करके लिखदिये हैं कि—

देत्रोयदिपिताजातः शुभकर्मानुयोगतः ।

तस्याक्षममृतंभूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छति ॥१॥

गान्धर्वेभोग्यरूपेण पशुत्वेचतुण्मवेत् ।

आद्वाक्षंवायुरुपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति ॥२॥

पानंभवतियक्षत्वे राक्षसत्वेतथाऽमिषम् ।

दानवत्वेतथामांसं ग्रेतत्वेऽधिरोदकम् ॥३॥

मनुष्यत्वेऽक्षपानादि नानाभोगरसीभवेत् ॥

महाभारत—श्रीदेवन मुनीश्वर के वचन ॥

अर्थात् यदि मनुष्य शुभकर्मानुसार मरकर देवता बनेगा तो उस को वह आद्वा का अन्न अमृत रूप में—प्राप्त होता है, एवं गन्धर्व जाति में भोग्य रूप से, पशुयोनि में (तृण) घास रूप से, नागयोनि में वायुरुप से, यक्षयोनि में मदिरा रूप से, राक्षसयोनि में—आमिष रूपसे, दानवयोनिमें मांस रूप से, ग्रेतयोनि में रुधिर रूपसे और मनुष्ययोनि में अन्न पानादि रूपसे वह आद्वाक्ष प्राप्त होता है। इसलिये हम लोगों का जो सात्त्विक शुद्ध पवित्र

अन्न धृत—दुर्घादि प्रिय पदार्थ हैं वे ही श्राद्धकर्म में मुपात्र ब्राह्मणों के सार्वत मृतपितरों के निमित्त देना चाहिये इसलिये—शास्त्र में कहा है कि—  
 ‘यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः,—अर्थात् जिस पुरुषकी जो स्वाभाविक खुराक है वही देवताओं के प्रति भी अर्पण करे ॥

तात्पर्य यह है कि हम मनुष्यमात्र की शुद्ध सात्त्विक अन्न, धृत, दुर्घ, फल फूलादि खुराक वे ही श्राद्धादि शुभ कर्मों में पितृ—देवों की पूजा करनी चाहिये और उस हमारे दिये हुए पदार्थों को सूक्ष्म रूप में लेजा कर पितृदेव हमारे पितरोंके प्रति यादेहानुकूल करके तृप्त करते हैं और हम लोगों को भी आशीर्वाद देकर आनन्द मुखका भागी करते हैं ॥ छं तत्सदिति शम् ॥

इति श्री श्राद्धपितृमीमांसायां मृतपितृभ्यो  
 भोजन—प्राप्त्यर्थं शास्त्रोक्तं मार्गप्रद-  
 शने चतुर्थोऽध्यायः ॥

\* हम मनुष्यमात्रकी स्वाभाविक यही अन्न—धृत—दुर्घ—फल फूलादि सात्त्विक शुद्ध पवित्र खुराक है । और यह न समझना चाहिये कि—जो मासाहारी मनुष्य हैं वे नासु घग्नेरह देवताओंके प्रति अर्पण करें—नहीं नहीं, कदापि नहीं ॥ एस मनुष्यमात्र की स्वाभाविक खुराक मांस घग्नेरह कदापि नहीं है देखो मेरा बनाया हुआ “मासिभृणनियेष” नामक ट्रैक्ट कि जिस में लूब विचार पूर्वक यह सिद्ध किया गया है कि मनुष्यमात्र की स्वाभाविक खुराक अन्न है ॥

## अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

समोजी—श्रीपरिणिष्ठत जी महाराज ! अब कृपा करके यह बताशो कि पितृलोक इस मनुष्यलोक से भिन्न कोई अन्य लोक है क्या और वह कहां स्थित है ? तथा उस लोक के अधिष्ठातृपितृदेवोंका शरीर कैसा है और उनका राजा कौन है ? तथा हे महाराज ! दयापाल ! यह भी बताइये कि हम मनुष्य मात्र को इन पितृलोक निवासी पितृदेवों के पूजन सत्कार ( आद्व-तर्पण ) करने की क्या आवश्यकता है ? अर्थात् आद्व तर्पण न करने से क्या कोई दोष वा हानि है ?

सनातनी—महाशय जी ! ये आप के प्रश्न यथार्थ और ठीक २ हैं । अब आप अद्वापूर्वक क्रमसे इन प्रश्नों का वेदादि सच्चास्त्वप्रमाणों से एवं प्रबल युक्तियुक्त समाधान शब्दण करो ॥

यथा—ग्रथम आप का प्रश्न यह है कि पितृलोक मनुष्यलोक से भिन्न कोई अन्यलोक है और वह कहां है ? चो हे महाशय जी देखो शतपथ ब्राह्मण में स्पष्टरूप से दिखलाया गया है कि—पितृलोक एक स्वतन्त्र लोक है । जैसे कि—

अथ त्रयोयावल्लोका मनुष्यलोकः पितृ-  
लोको देवलोक इति । शत० ब्राह्मण १४ । ३ । २४ ॥

अर्थात् तीन भोग भूमियें हैं—मनुष्यलोक, पि-

तृलोक और देवलोक । इनमें जीव कर्मनुसार प्राप्त होता है । और केवल निषिद्ध कर्मों का कर्ता जीव नरक को ही प्राप्त होता है । इससे सिद्ध हुआ कि पितृलोक, मनुष्य और देवलोकों से 'जुदा सक स्वतन्त्र लोक है । तथा च—

**“दक्षिणाप्रवणोवै पितृलोकः”** शतपथ ब्रा० १३।८।४॥

**“कर्मणापितृलोकः”** वृहदारण्यक ।

दक्षिण दिशामें पितृलोक है । शुभकर्मों करके पितृलोक में वास होता है । यथा—

तेवाएन आहुतोहुते उत्क्रामतस्ते अन्त-  
रिक्षमाविशतस्ते अन्तरिक्षमेवाहवनोयं कुर्वाते  
इत्यादि ॥ शतपथ ब्रा० ११ । ६ । २ । ६ ॥  
तथा—अथ ये यज्ञेन दानेन तपसालोकं जयन्ति  
ते धूममभिसमर्चन्ति, धूमाद्रात्रिं रात्रेपक्षीय-  
माणं पक्षमपरपक्षान्यान् पणमासानदक्षिणादि-  
त्य एति मासेभ्यः पितृलोकमित्यादि ॥ शतपथ-

शर्यादि—मरण समयमें इस प्राणीकी तीन गति होती हैं, देवलोक पितृलोक, अधोलोक, उसमें पितृलोक का गमन कहते हैं कि—यज्ञ दानादि कर्म करने वाले मनुष्य धूप से रात्रि में कृष्णपक्ष, उस से दक्षिणायन और वहां से पितृलोक को गमन करते हैं । और जो सत्कर्म नहीं चै कीटादि योनि को प्राप्त होते हैं । इस से स्पष्ट सिद्ध हुआ कि पितृ-

यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले पितूलोकादि उत्तम लोकोंमें जाते हैं । और पितूलोक एक स्वतन्त्र चिरकाल आनन्दप्रद लोक है । यथा—

(स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः०)

तैत्तिरीयोपनिषद् ॥

सो यह पितूलोक (विधूर्धर्वभागे पितरो वसन्ति)

[ सिद्धान्तशिरोमणी ]

चन्द्रलोक के भी ऊपर है जहां पितरोंका निवास है । तथा—

उदन्वत्तीद्यौरवसापीलुमतीति  
मध्यसा । तृतीया ह प्रद्यौरिति  
यस्यां पितरञ्चासते ।

अथर्व वेद का० १८ अनु० २ मा० ॥ ४८ ॥

इस मन्त्रका सम्पूर्ण भावार्थ आगे द्वितीय श्लोक में स्पष्ट करदिया है वहां ध्यान देकर पढ़ेंगे तो अच्छी तरह ज्ञान होगा कि “प्रद्यौ” नाम वाले आकाश के तीसरे भाग मे पितूलोक है जहां पितर देव रहते हैं ॥

अब आपका द्वितीय प्रश्न है कि पितूलोक निवासी पितरों का शरीर कैसा होता है और उन्होंका राजा कौन है ?

सो हे महाश्शय जी ! इन पितूलोक निवासियों का शरीर वायुतत्व प्रधान है । यथा—

## आप्यतेजसवायव्यानि लो- कान्तरे शरीराणि । अथर्व० ३। १। २। २८॥

अर्थात्—जलतत्व, तेजतत्व अथवा वायुतत्वंग्र-  
धान शरीर बनकर, जीव लोकान्तरों को जाता है ।  
पार्यिवतत्व (पाञ्चभौतिक पृथिवीतत्वग्रधान स्थूल)  
शरीर से नहीं जाता है । इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि  
जीव वायु आदि तत्वग्रधान शरीर धारण क-  
रके पितृ आदि लोकान्तरों में जाता है इससे वहाँ  
के निवासियों का शरीर अवश्य ही वायु आदि तत्व  
ग्रधान है । अर्थात् वायु कायरूप वे पितर हैं । और  
वायु इन चर्मचक्षु यानी सांसारिक नेत्रों से देखने में  
नहीं आता है इसलिये ये पितर वायुतत्वंग्रधान सू-  
दम शरीरधारी होने से हरएक मनुष्य को देखने में  
नहीं आते हैं इसलिये वेदमें स्पष्ट दरशाया है कि—  
तिरङ्गवै पितरी मनुष्येभ्यः०—शतपथ० २। ३। ४। २९॥

सूदम होने के कारण वा यथेच्छाचारी होनेके  
कारण पितर मनुष्यों से अदृश्य छिपे से होते हैं ।  
इस से सिद्ध हुआ कि जो सूदम अदृश्य हैं जो सर्व  
साधारण मनुष्यों के दृष्टिगोचर नहीं होते वे पितर  
अवश्य ही सूदम शरीरी वायुकायरूप होने से अदृ-  
श्य हैं परन्तु पूर्ण शुद्ध—पूर्ण अद्वा भक्तियुक्त, पूर्णध-  
र्मात्मा—सत्यवादी आस्तिक मनुष्यको ये पितर सा-

कात भी दीख पड़ते हैं और दर्शन \* देते हैं। इस लिये उत्तम श्रुति में “इव” शब्द कहा है। यही वायुकाय सूहम देहधारो पितृदेव आद्वकर्ममें आवाहन मन्त्रों से [ तत् पितृलोकाऽजीवलोकं अभ्यायन्ति ]

शतपथ ख्रा० १ का० १३ प्र० ४ का० ६ ॥

\* एकवार श्रीमर्योदापुरुषोत्तम ( परमात्मा के पूर्णावतार ) श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने बन में पिता श्री दशरथ जीका एकोद्दिष्ट आदृ किया—यह कथा अही मनोहर है—आदृसमय में आदृभोक्ता मुनियों के देह में श्रीआनंदजी ( सीताजी ) ने अपने श्वशुर दशरथजीके दर्शन किये ।

### श्री वाल्मीकीयरामायणे—

मधासुचलितेसूर्ये कालेकुतुपकेतथा ।

आयाताऽरथयससर्वे ये रामेण निमन्त्रिताः ॥ १ ॥

तानागतान्मुनीन्दृष्टा वैदेहीननकात्मजा ।

अपासर्पत्ततोदूरे विप्राणां भव्यतस्थिता ॥ २ ॥

अन्यत्र च गतासाध्वी मन्येचाहंत्रपान्विता ।

किन्तावद्वोजयेविप्रान् सीतामन्वेययामिकिम् ॥ ३ ॥

गतेषुद्विजमुख्येषु प्रियांरामो व्रवीदिदम् ।

किमर्थसुम्नुनस्तसि सुनीन्दृष्टा समागतान् ॥ ४ ॥

एवमुक्तातदाभव्रा त्रपयाधीसुखीतथा ।

सुख्वन्तीचाश्रुसहृत राघव वाक्यमन्वीत् ॥ ५ ॥

पितरतवमयादृष्टे आह्मणाद्वैषु राघव ।

हृष्टान्वपान्वितावाहनपक्रान्तातवान्तिकात् ॥ ६ ॥

याहराज्ञापुराहष्टा सर्वालङ्कारभूषिता ।

सा स्वेदमलदिग्धाङ्गी कथ पश्यामि भूमिपम् ॥ ७ ॥

स्वहस्तेन कथ राज्ञे वानेय भोजन त्विदम् ।

दासानामपियदासा नोपभुज्ञन्ति कहिंचित् ॥ ८ ॥

पितृलोक से जीवलोक अर्थात् मनुष्यलोक में  
आते हैं। इसलिये वेदमें आच्चा है कि—

**भावार्थ—**कुतुपकाल (अपराह्न) में जब श्रीरामचन्द्र जी आदृ करने लगे तो जिन २ ऋषियों को निमन्त्रण दे आये ये वह सब मुनिमण्डली आगयी, उन्हें आता हुआ देखकर जानकी जी उठकर भागगई और दूर जाकर लता पताओं में अपने को छिपालिया। तब श्रीरघुनाथ जी को बड़ा आश्वर्य हुआ कि आज जानकी जीने मुनियों से क्यों परदा किया। अब मुझे क्या कर्तव्य है, जानकीको ढूँढ़ या मुनियोंको भोजन कराऊं। अन्त में यही स्थिर किया कि आदृकाल का लोप न होवे। भिरहदान करके ब्रह्मभोज पूर्ण किया—आशीर्वाद देती हुई सब ऋषिमण्डली चलीगई। उन सब के विदा होते ही जानकी जी आगयीं, तब श्रीरामचन्द्र जी कहने लगे कि हे प्रिये! तुम कहाँ गईं थीं तुमने ऋषियोंका बड़ा अनादर किया और न उनको प्रणाम किया इतना सुनकर लज्जात्यमान जानकी नीचेको मुखकर रोती हुईं बोली कि हे नाथ! ब्राह्मणोंके अङ्गमें महाराज श्री दशरथ जीको देखकर मैं लज्जावश हो लता और मैं जा छिपी क्योंकि जिन प्रबुंदुर जी ने सर्व अलंकारों से भूषित मुझे देखा था आज उन के सामने जटा और वल्कल धारण करे कैसे इस वेष को दिखाऊंगी इसी से उस समय छिप जाना ही उत्तम था। दूसरा—यह (वानेय) वनका भोजन अपने हाथ से कैसे परोसूंगी—जिन महाराजको पूर्व पट्टरस परोसती थी

इस कथा से सिद्ध होता है कि आदृभोक्ता ब्राह्मणोंके साथ पितर मूर्त्मरूप में आते हैं श्रीर श्रीसती जानकी जी जैसी पूर्ण पतिव्रतायें या पूर्ण धर्मात्मा ननुष्य ही उन पितरोंके दर्शन पा सकते हैं॥

उभे दिशावन्तरे विदधाति प्राचीं च दक्षि-  
णां चैतस्याथं ह दिशि पितृलोकस्य द्वारं द्वारै-  
वैनं पितृलोकं प्रपादयति ॥ शतपथ० ब्रा० १३।४।४४५॥

याम् नगरांदि से पूर्व और, दक्षिण दिशा के  
बीच आग्नेयकोण में चतुष्कोण वैदी ( अमशान म-  
न्द्र ) बनावे, क्योंकि इसी आग्नेय दिशामें पितृ-  
लोक का द्वार है । ऐसा अमशान बनाने वाले अपने  
मृतक को द्वार के मार्ग से पितृलोक को पहुंचाते हैं ॥

इत्यादि से स्पष्ट विदित हुआ कि पितृलोक एक  
स्वतन्त्र लोक है और वह दक्षिण में है—उनका द्वार  
आग्नेयकोण में से है । वहां अत्यन्त पुण्यवान् जीव  
जा सकते हैं तथा उन के निवासी पितृदेवोंका श-  
रीर वायुकाश रूप सूक्ष्म है । पूर्णधर्मत्वा—अद्वायुक्त  
सत्यवादी मनुष्योंको ही उन पितृदेवोंका दर्शन होता  
है । और वे ही वेदके आवाहन मन्त्रों से निरन्तर  
ब्राह्मणों के शरीर में अदृश्य रूप से वहां आद्वकमें  
आते हैं । परन्तु दिव्य चक्षु वाले ही उनका दर्शन  
कर सकते हैं । इति ॥

हे महाशय जी ! अब आप यह भी सुनो कि  
उन पितृदेवों का राजा ( स्वामी—अधिष्ठाता )  
कौन है दृ ॥ यथा—

ये समानाः समनसः पितरो  
यमराजय० । यजुर्वेद वाज्ञनेय ऋ० १८ नं० ४५॥

पितृलोक का राजा यमराज है। अर्थात् जो जाति तथा रूपादि करके, तुल्य स्कर्से अन्तःकरणों वाले पितर यम देवता के राज्यमें रहते हैं। तथा-

यो भमारः प्रथमो मत्यानां  
यः प्रेयायं प्रथमो लोकमेतम् । व्री-  
वस्वतं संगमनं जनानां यमं रा-  
जानं हविषा सपर्यत ॥

अथर्वा का० १८ । अनु० ३ चा० १३ ॥

अर्थ—सृष्टि के आरम्भ में जो मनुष्यों के बीच सबसे पहिले भरता है, और भरणानन्तर जो इस पितृलोक में पहिले जाता है पीछे अन्य मनुष्य मरण के जिस के अधिकार में जाया करते हैं इस कारण वह जनों का “संगमन” कहाता है [ सम्यग्गच्छन्ति जना यस्मिन् यत्सज्जिधौ स सङ्गमनस्तम् ] उस विश्वस्वान् के पुत्र “यमराज” का है मनुष्यो ! हविर् यज्ञ द्वारा पूजन करो । जैसे पितर सनातन हैं अर्थात् मनुष्यों के समान घोड़े २ कालमें उन का जन्म भरण नहीं होता वैसे पितरों का वा मरकर पुण्यकर्मों से पितृलोक में जाने वालों का राजा यम भी पितृलोकमें जाने पश्चात् अस्मदादि की अपेक्षा सनातन कहाते हैं। कभी जिन का नाश न हो ऐसे तो वायु ग्रादि सूइम तत्व भी नहीं हैं क्योंकि ग्रलय के

समय वे भी नहीं रहते इस से सापेक्ष नित्य वा सनातन सूक्ष्मतत्वों के तुल्य पितर भी हैं। जैसे मनुष्य का शरीर पृथिवी तत्वप्रधान है और स्थूल है वैसे पितॄलोक के राजा यम का और पितरों का शरीर वायुतत्वप्रधान सूक्ष्म है। जैसे मनुष्यदेहोंका अधिष्ठाता एक २ जीवात्मा होता है वैसे पितॄदेहोंके साथ भी एक २ अधिष्ठाता जीव है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि पितॄलोक का राजा यमराज है। उक्तज्ञ—

**अपेमंजीवां अरुधन् गृहेभ्य-  
स्तं निर्वहत परियामादितः । सृ-  
त्युर्यमस्यासीद्दूतः प्रचेता असून्  
पितॄभ्यो गमयाज्ञुकार ॥**

अथवै० कां० १८ । ३ । २७ ॥

धै०—हे जीवाजीवित जना इमं मृतं देहं  
गृहेभ्यः पृथगपारुधन् निस्सारयत तमिती ग्रा-  
मात्परि—यहिर्निर्वहत नयत । प्रचेताः प्रकृष्टबु-  
द्धिमृत्युर्यमस्य दूत आसीदस्ति समृतस्यासून्  
पितॄभ्यः पितॄमात्रोऽगमयोज्ञुकार गमयति व-  
क्त्वमाने लड्डिटौ ॥

भावार्थ०—हे जीवित पुरुषो ! इस मरेहुए मुर्दं  
शरीर को घरोंसे बाहर निकालो और उस को इन-

यम से बाहर ले जाओ । यमराज का दूत बड़ा बु-  
द्धिमान् मृत्यु नामक है जो मरे हुओं के प्राणों को  
पितर बनने के लिये यमलोक अर्थात् पितृलोक में  
पहुंचाता है । तथा—

**ये नः पितुः पितरो ये पिता-  
महा य आविविष्टुर्वन्तरिक्षम् ।  
तेभ्यः स्वराङ्गसुनीतिर्नो अद्य य-  
थावशं तन्वः कल्पयन्ति ॥**

अथर्व० का० १८ । अर्नु० ३ । मं० ५६ ॥

अर्थ—जो हमारे पिता के पितर पितामहादि ( दादे बगैरह ) तथा अपितामहादि कि जो मरण-  
नन्तर महान् अन्तरिक्ष लोकमें प्रवेश करतुके हैं उन  
हमारे पितरों के लिये, प्राणों का ले जाने वाला  
स्वतन्त्र राजा यम कर्मानुसार उत्तम शरीर देवे । इ-  
त्यादि वेदमन्त्रों से निःसन्देह सिद्ध हुआ कि पितृ-  
लोक का राजा श्रीयमराज है और वही मनुष्यादि  
प्राणीभाव को ( मरणानन्तर उत्तम-निकृष्ट कर्मानु-  
सार ) यथायोग्य शरीर देकर सुख दुःखादि भुगाता  
है । इति ॥

हे महाशय जी ? अब आप के उस संशय का  
भी समाधान किया जाता है जो कि पितृलोकनि-  
यासी पितरों के पूजन सत्कार ( याद्व-तर्पण ) क-

रने की क्या आवश्यकता है और न करने से क्या हानि वा दोष है ।

समाधान—प्रजापतिं चैभूतान्युपासीदन् प्रजा-  
वै भूतानि विनोधेहि यथा जीवामेति । ततो देवा  
यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदं  
स्तानब्रवीदु यज्ञो व्रोऽन्नममृतत्वं व ऊर्क् सूर्यो  
वो ज्योतिरिति ॥१॥ अथैनं पितरः प्राचीनावी-  
तिनः सत्र्यं जान्वाच्योपासीदं स्तानब्रवीदु मा-  
सि मासि वोऽशनं स्वधा वी मनोजवश्चन्द्रमा  
वो ज्योतिरिति ॥२॥ अथैनं मनुष्याः प्रावृत्ता उ-  
पस्थं कृत्वोपासीदं स्तानब्रवीत् सायं प्रातर्वोऽ-  
शनं प्रजावो मृत्युरग्निवर्ते ज्योतिरिति ॥३॥

यजु० शन० का० २ प्र० ३ ब्रा० ४ ॥

**भाषा भावार्थः—**सृष्टिके आरम्भ में देवता तथा  
पितर और मनुष्य ये तीन प्रकार के भूत ( जिस  
प्रकार से हमारा जीवन—सत्कार—पूजन हो सो प्र-  
कार हमारा विधान करें ) इस कथन के अभिप्राय  
से प्रजापति ( ब्रह्मा ) के समीप गये, वहां प्रथम दे-  
वताओं ने यज्ञोपवीत को धारण कर दक्षिणजानु  
का भूमि पर पात कर ब्रह्माजीके सन्मुख उपस्थित  
होकर जीविका ऐं सन्मान होने की याचना की  
तब प्रजापतिने यह कहा कि यज्ञ आप का अन्न है  
अमृत आपका ऊर्क् ( वीर्यप्रद ) है और सूर्य आप  
के लिये प्रकाश है ॥ १ ॥

फिर पश्चात्-प्राचीनावीति ( अपसव्य यानी यज्ञोपवीत बायें तरंफ करते ) हुए बांया ( जानु ) घोंटू पृथ्वी पर नवाय कर पितर लोग उपस्थित हुए, तब उन पितरों के प्रति प्रजापति ने यह कहा कि महीने २ भरमें १ \* एकवार श्रमावास्याके दिन श्राप का भोजन होगा । तुम्हारे लिये कर्मकाण्डमें “स्वधा” शब्द बोला जायगा । वह स्वधा पदवाच्य वस्तु तुम्हारे लिये भनके तुल्य वेग वाला होगा । और चन्द्रमा तुम्हारा ज्योति अर्थात् तुमको प्रकाश पहुंचाने वाला होगा ॥ २ ॥

फिर प्रावृत “निवीतं करण्ठलस्मितम्” ( ‘अ-

\* यह भी ध्यान में रहे कि मनुष्यके एक महीनेका समय पितरों का एक दिन-रात सभ शाखोमें भाना गया है । इस लिये कृष्णपक्षरूप रात्रि की समाप्ति में प्रातः काल श्रमावास्या को पितरोंको अपने दिन के हिसाब से नित्य भोजन मिला और जानुप दिन के हिसाब से महीने २ में भोजन मिलना कहा गया है तथा उक्त कथम से यह भी आया कि अपसव्य रहने वाले एव बांया घोंटू टेक के बैठने वाले और महीने २ में श्रमावास्या को एकवार भोजन करने वाले तथा चन्द्रमा जिन का ज्योति है वे पितर हैं । वा जिनका नाम पितर है वे उक्त प्रकार से अपसव्यादि रहने वाले हैं । मनुष्य प्रति दिन भोजन करते हैं और पितर महीने २ में एकवार श्रमावास्या को भोजन करते हैं इस कारण पितर मनुष्य महीने अधांत मनुष्यों से स्पष्ट हैं । इस से भी स्पूल देह भारी जीवित पितरो का स्पष्ट उद्देश्य है ॥

यात् गलेमें मालाकी तरह यज्ञोपवीत पहिने ) हुए दोनों ( जानुश्चों ) घोंटुश्चोंको भूमि' पर नवाय कर मनुष्य उपस्थित हुए, तब उन से प्रजापति ने यह कहा कि सार्य और ग्रातःकाल आपका भोजन होगा और पुत्र-पौत्रादि प्रजा आप लोगों का मृत्यु है और अग्नि आपकी ज्योति यानी प्रकाश है ॥ ३ ॥

इत्यादि वेद की श्रुतियों में स्पष्ट श्राव्यों दिखायी वा कही गयी है कि हर एक वैदिकधर्मावलम्बी मनुष्यमात्रका यह अवश्य कर्त्तव्य है कि ब्रह्मा जी द्वारा नियत किये यज्ञों से देवताश्चों का, तथा प्रत्येक भहीनेकी अभावास्था में पितृपञ्च ( आद्व ) द्वारा पितरों का पूजन-सत्कार करें जिससे कि वे देवता और पितर अपने अभीष्ट ( यानी भुकर्त्ता ) पूजन सत्कारको ग्रहण करके सन्तुष्ट होकर ब्रह्माश्चाकारी मनुष्योंके प्रति सन्तान-धन-धान्य समृद्धि आदि मुख देकर तथा उन्हों के मृतपितरों की भी सद्गति करें वा करते रहें । और जो मनुष्य वेद तथा श्री ब्रह्माजीकी श्राव्या उल्लघ्न करके वेदोक्त देव-पितृ यज्ञादि कर्म नहीं करता वह ब्रह्माश्चा विरोधी होकर वेदमार्ग से अष्ट होकर अनादर और दुःखको प्राप्त होता है और उन देव पितरोंके कोपद्वारा वह मनुष्य अनर्थ और दोषका भागी होता है । तथा और भी स्पष्टरूप से वेद में दिखलाया गया है कि—

एष \* पन्था एतत्कर्मैतदु ब्रह्म तत् सत्यं  
 तस्माक्ष प्रमाद्येत् तस्माक्ष प्रमाद्येत्तत्त्वातीयादु  
 न ह्यत्यायन् पूर्वे येऽत्यायंस्ते परावभवः तदुक्त  
 मृषिणा—“प्रजा ह तिसोऽत्यायमीयुन्यन्या अ-  
 कर्मभितो विविश्रे, वृहद् ह तस्थौ भुवनेष्वन्तः  
 पत्रमानो हरित आविवेश” इति, “प्रजा ह ति-  
 सोऽत्यायमीयुरिति” या वै ता इमाः प्र-  
 जास्तिस्तोऽत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि व-  
 द्वावगधार्त्त्वेरपादाः, ‘न्यन्या अकर्मभितो वि-  
 विश्रे, इति, ता इमाः प्रजा अकर्मभितो निवि-

\* एतच्छब्दः सक्षिहितार्थपरामर्शकः, सक्षिहितवार्थै  
 उत्तीत आगामीचेत्येवं द्विविधः, तथा च ( एष ) उभयवि-  
 धोप्यर्थः ( पन्थाः ) पुरुषार्थस्य मार्गः, साधनमिति यावन्,  
 तदुभयं विस्पष्टं निर्दिश्यते ( एतत्कर्म एतद्ब्रह्म ) अग्निमील  
 इत्यारभ्य, अहोरूपम् इत्यन्तेनातीत सक्षिहितयन्येन प्रति  
 पादितं यत्कर्म तथा उक्तम्-इत्यारभ्य औचार्य इत्यन्तेन स-  
 क्षिहितेनारण्यक द्वय रूपेणोक्तर यथेन निरूपितं यत्सगुणं नि-  
 र्गुणं च ब्रह्म एतदुभयमपि पुरुषार्थ साधनं, व्यवहारं परमार्थं  
 भेदेनोभयमपिसत्यम्, अत्रकर्मशब्देन तज्ज्ञानपूर्वकमनुष्ठानं  
 ब्रह्मशब्देन च तद्विधयं ज्ञानमात्रं शृण्यते, यथोक्तस्योभयवि-  
 धस्य मार्गंत्व द्रढपितुमयोगठयावृत्तिमन्ययोगव्यावृत्तिं च  
 विधत्ते ( तस्मात् प्रमाद्येत् ) कर्मनुष्ठानव्रह्मज्ञानपोरसंपादनं  
 प्रमादः, तथा सुपादयितुं प्रवृत्तेनाऽप्यालस्यादिना तत्परि-  
 त्यागोऽपि प्रमादः, ए तदुभयं न कुर्यांद्र इति-।

ष्टा इममेवाग्निं, वृहद् ह तस्थौ भुवनेष्वन्तः  
इति, अद उ एव वृहद् भुवनेष्वन्तरसावादित्यः  
पवमानो हरित आविवेश, इति, वायुरेव पव-  
मानो दिशो हरित आविष्टः” ॥

<sup>ऋग्वेद-ऐतरेयारण्यक २ अ० १ स० १ ॥</sup>  
भाषार्थः—(सतत्कर्म—सतद्ब्रह्म) यह जो पूर्वो-  
त्तर ग्रन्थसे देव—पितृयज्ञादि कर्म और ब्रह्मका नि-  
रूपण किया है (एष पन्थाः) यही पूर्वार्थका मार्ग  
है अर्थात् भोग मोक्षका देनेवाला है (सतत् सत्यम्)  
यही वेदोक्त कर्म तथा ब्रह्मज्ञान अवश्य फल देनेसे  
सत्य है। और अन्य जो अवैदिक अनुष्ठान हैं वह  
अनर्थ पर्यवसायी होनेसे मिथ्या हैं (तस्मात् प्रमा-  
द्येत्) तिस अस्त्रायमार्गसे प्रमाद न करे और (त-  
स्मातीयाद्) तिस मार्ग का अतिक्रमण भी न करे  
किन्तु आलस्य तथा अन्य कुमारोंको त्यागकर इसी  
का ही अनुसरण करे; इसीसे ही (नक्षत्र्यायन् पूर्व)  
जो पूर्व मनु—वसिष्ठ आदि महापुरुष हुए हैं वह इस  
मार्गका अतिक्रमण यानी उल्लंघन नहीं करते रहे  
और ( येऽत्यायन् ) जो नास्तिक लोग इस वेदोक्त  
मार्गका उल्लंघन करते रहे ( ते परा वभूवः ) वह  
पूर्वार्थसे भट्ट हुए निरादरको प्राप्त हुए हैं ॥  
इस ब्राह्मणोक्त अर्थकी दृढ़ताके लिये मन्त्रदा-  
प्रमाण देते हैं कि ( तदुक्तमृषिणा ) इति, अब इस  
मन्त्र का स्वयं ही ब्राह्मण व्याख्यान करता है कि  
प्रजा ( प्रजा ह ॥ तिसोऽत्यायमीयुः इति, यावै ता

द्वाः प्रजास्तिस्त्रोऽत्यायमायन् तानीमानि वयांसि  
वज्ञा अवगधापचेरपादाः ) अर्थात् ब्राह्मणादि भेदसे  
जो अनेक प्रकारकी प्रजा हैं उनमें से तीन भाग जो  
प्रजा हैं वह वैदिक कर्मके उल्लंघन करने वाली हैं  
और एकभाग प्रजा वैदिककर्ममें निष्ठावाली है। वहां  
जिन प्रजाओंने वैदिककर्म का त्योग किया है उन  
प्रजाओंकी गति कहते हैं—( तानीमानि वयांसि )  
अर्थात् जिन्होंने श्रौत यानी देव-पितृ यज्ञादि कर्म  
का त्याग किया है उनमें से एकभाग तो काक आदि  
पक्षि योनियोंको प्राप्त होते हैं जो कि आकाश में  
विचरने वाले हैं और एक भाग वज्ञ \* ( वृक्ष ) और  
अवगध ( श्रोषधिये वा वनस्पतिये ) हैं और एक  
भाग ईरपाद हैं अर्थात् पृथिवी के बिलमें निवास क-  
रने वाले पादोदर ( सर्प ) आदि हैं, अर्थात् जिन ३  
लोगोंने पूर्वोक्त श्रौतमार्गका त्याग किया है वह मर  
कर नरक भोग के अनन्तर पशुपत्तादि-कीट स्थावर  
आदि अनेक तिर्यग् योनियों को प्राप्त होते हैं ।

इस-प्रकार वैदिकमार्गके उल्लंघन करने वाली  
तीन प्रकारकी प्रजाकी व्यवस्था कहकर अब एकभाग  
याली जो आस्तिक प्रजा है उस की गति कहते हैं  
कि “न्यन्याशकंमभितो यिविश्रे” इति ।

\* ( वज्ञः ) धनगता सृष्टाः, अवगधाः—अवन्ति-रशन्ति  
मनुष्यादीन् इति अवा, यध्यन्ते—अभिकाढ्यन्ते जनैरिति  
गथा बनस्पतिरूपा ग्रीह-यवादि रूपा श्रोषधय, इत्यर्थः ॥

इसीका विवरण करते हैं ( ता इमाः प्रजा अ-  
र्कमभितो निविष्टा इममेवाग्निम् ) इति, अर्थात् आ-  
स्तिक प्रजासे से कोई सक तो आहवनीय रूप ( अर्क )  
आर्चनीय जो अग्नि है उसकी उपासना करते हैं और  
कोई एक ( वृहद् हतस्थौ भुवनेष्वन्तः ) इसीका वि-  
वरण कहते हैं कि ( अद उ एव वृहद् भुवनेष्वन्ता  
रसावादित्यः ) इति, अर्थात् यह जो ब्रह्मारणमें व्या-  
पक तेजोमय मात्तरण्ड-( सूर्य ) है उसकी उपासना  
करते हैं। और कोई एक [ पवमानो हरित आविवेश ]  
इसका विवरण कहते हैं कि ( वायुरेव पवमानो दिशो  
हरित आविष्ट ) इति, अर्थात् निखिल दिशा में चं-  
चारी जो पवित्ररूप वहन शील वायु हैं तिसकी उ-  
पासना करते हैं, अर्थात् समष्टि वायुरूप हिरण्य गर्भ  
की उपासना करते हैं ॥

तात्पर्य यह है कि आस्तिक लोग अग्नि आदि  
की उपासना द्वारा उद्दगति को प्राप्त होते हैं और  
नास्तिक लोग पक्षि आदि रूप अधोगति को प्राप्त  
होते हैं ॥

तथा मनु भगवान् एवं योगी श्री यज्ञवल्क्य  
मुनि ने भी—

अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ।  
प्रसक्त च निद्र्यार्थं पु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥

मनुः अध्या० ११ । ४४ ॥

विहितस्याननुष्ठानान्विन्दितस्य च सेवनात्

अनिग्रहात्त्वेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥

याज्ञ० अ० ३ । २१६ ॥

अर्थात्-विहित ( यानी वेदोक्त देव-पितृय-ज्ञादि ) कर्मके न करने से और निषिद्ध कर्मोंके करने से तथा विषयोंमें अति आसक्त होनेसे पुरुष प्रायश्चित्त का भागी होता है । एवं याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि-विहित कर्म के न अनुष्ठानसे और निष्ठित ( परस्तीगमनादि ) के सेवनसे तथा इन्द्रियोंको न रोकनेसे पुरुष पापको प्राप्त होता है ॥

इत्यादि वेद-स्मृतिशास्त्रोंके ग्रन्थाणेसे निस्सन्देह सिद्ध होता है कि मनुष्यमात्र, वेदादिशास्त्रोक्त ग्रीत-स्मातं कर्मों के सेवन न करने से पतित होकर अधोगतिको प्राप्त होता है । इसलिये हरसक वेद-मतानुयायी आस्तिक जनका यह अतीव मुख्य और अवश्य करने योग्य कर्तव्य है कि वह निरालस्य होकर विना शक ठीक २ शास्त्रदर्शित विधिसे देश-काल पात्रका विचार करके आद्वादि (देवपितृयज्ञ) करके अपना जीवन सफल करे । और उपरोक्त कर्मकारण का त्याग करने से निःसन्देह दोष एवं अत्यन्त हानि होती है ॥ इत्यलमृ विद्वात्मु—

इति श्री श्राद्धपितृभीमांसायां पितृलोकस्थि-

तिस्तस्याऽधिष्ठात्रपितृदेवार्ना स्वरूपव-

र्णने चैव तत्कर्माऽनुष्ठानस्याऽत्यावश्य-

कता प्रदर्शने समाप्तोऽयं पञ्चमोऽध्यायः ॥

ॐ—सच्चिदानन्देश्वराय नमः ॥

## अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

समाजी—श्रीपरिणिडत जी महाराज ! अब कृपा करके यह भी तो सुनाओ कि आद्वामे केवल ब्राह्मणोंको ही निमन्त्रण देकर भोजन करानेकी क्या आवश्यकता है ? क्यों नहीं उन हमारे मित्र (दोस्त) वा आन्य किसी गरीब अनाथ अवयवा अब नवीन आर्य हुए [मुसल्लीन, अद्वुलगफूर वगैरह जिन्हों का आर्य नाम धर्मपालादि रखे गये हैं उन ] महाशयोंको अपने पितरोंके निमित्त आद्वामें भोजन करावें ? क्या केवल ब्राह्मणोंको ही इसके लिये किसी महाराजासे इकरारनामा लिखा मिला है वा कोई इनको किसीने सार्टीफिकेट लिखदिया है ?

सनातनी—महाशय जी ? घबराओ न त, योड़ा धैर्य धारण करो और ध्यान लगाकर सुनो कि ब्राह्मणों के लिये श्रीमहाराजाधिराज महर्षि श्रीमनु भगवान् ने क्या ही सुन्दर सार्टीफिकेट रूप में पक्का इकरारनामा लिखदिया है कि जो सब वेदमतानुयायी आस्तिक हिन्दुओंको परम माननीय है ॥

यथा—मनुस्मृत अध्याय १ श्लोक ८२ से १०१ तक  
ऊर्ध्वंनाभेर्मध्यतरः पुरुषपरिकीर्तिः ।  
तस्मान्मेधपतमं त्वस्यमुखमुक्तंस्वर्घंभुवा ॥८२॥

उत्तमाद्वोद्भवाजज्यैष्टयाद् ब्राह्मणश्चैवधारणात् ।  
 सर्वस्यैवास्यसर्गस्य धर्मतोब्राह्मणःप्रभुः ॥६३॥  
 तंहिस्वयंभूःस्वादोस्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसुजत् ।  
 हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्यचगुप्तये ॥६४॥  
 यस्यास्येनसदाश्रन्ति हत्र्यानित्रिदिवौकसः ।  
 कव्यानित्तिवर्पितरः किंभूतमधिकंततः ॥ ६५ ॥  
 भूतानांप्राणिनःश्रेष्ठाः प्राणिनांवुद्धिजीविनः ।  
 वुद्धिमत्सुनराःश्रेष्ठा नरेषुव्राह्मणाःस्मृताः ॥६६॥  
 ब्राह्मणेषुचविद्वांसो विद्वत्सुकृनवुहयः ।  
 कृतयुद्धिपुकर्त्तरः कर्तृपुव्रह्मवेदिनः ॥ ६७ ॥  
 उत्पत्तिरेवविग्रस्य मूर्त्तिर्धर्मरयशाश्वती ।  
 सहिधर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ६८ ॥  
 ब्राह्मणोजायमानोहि पृथिव्यामधिजायते ।  
 ईश्वरःसर्वभूतानां धर्मकोशस्यगुप्तये ॥ ६९ ॥  
 सर्वस्वंब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगतोगतम् ।  
 श्रेष्ठघेनाभिजनेनेदं सर्ववैब्राह्मणोऽर्हति ॥१००॥  
 स्वमेवब्राह्मणोभुद्भक्ते स्वंवस्तेस्वंददातिच ।  
 आन्तर्दृश्यादुब्राह्मणस्य भुज्ञते हीतरेजनाः ॥१०१॥

अर्थात्—ग्री ब्रह्माजीने पुरुषोंको नाभिसे ऊपर  
 के भागमें अधिक पवित्र कहा है । और इसके मुख  
 को तो उससे भी पवित्र कहा है ॥ ८२ ॥ ब्राह्मण सब  
 नंगों में उत्तम परमात्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है,  
 क्षणियादि तीनोंसे एहितो जन्मा है और चेदको मु-

खाय रखता है—इस कारण ब्राह्मण धर्म का उपदेश करने में इस सब सुष्ठुका गुरु ( शासक ) है ॥ ८३ ॥ स्वयम्भू ब्रह्माने तप करके देवताओं को ‘हव्य, और पितरों को ‘कव्य, पहुंचाने के लिये तथा इस सब जगत की [ यज्ञादि के द्वारा वर्षा आदि से ] रक्षा करने के लिये आरम्भ में अपने मुख से ब्राह्मणों को रखा है ॥ ८४ ॥ जिसके मुख से देवता हव्यों को और पितर कव्यों को सदा खाते हैं, तिस से बढ़कर कौन सा प्राणी हो सकता है ? ॥ ८५ ॥ पृथिव्यादि पञ्चभूतों से बनाये स्थावर जंगल सब प्राणियों में कीट पतंगादि प्राणी श्रेष्ठ हैं कदाचिंत् किञ्चित् सुखलेश के प्राप्त होने से और उनसे ( बुद्धिजीवी ) सार्थ निरर्थक स्थान में जाने न जाने वाले पशु आदि श्रेष्ठ हैं—उनसे प्रकृष्ट ज्ञान के सम्बन्ध से मनुष्य श्रेष्ठ हैं—उनसे भी सर्वपूज्य और मोक्षाधिकार के योग्य होने से ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ॥ ८६ ॥ ब्राह्मणों में भी स्वर्गादि फल देने वाले ज्योतिष्ट्रोमादि कर्म कारण के विद्वान् अधिकारी श्रेष्ठ हैं—उनसे आनंदगत के लिये प्रथम सत्कर्म करने वाले श्रेष्ठ हैं—उनसे भी हिताहित प्राप्ति परिहार भागी होने से ( कर्ता ) अनुमुत्ता श्रेष्ठ हैं—उनसे भी मोक्षफल के लाभप्रोग्य होने से ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते हैं ॥ ८७ ॥ ब्राह्मण का देह जन्म मात्र से ही अविनाशी धर्म की मूल्ति है जिस से वह धर्म के लिये उत्पन्न हुआ है । धर्मानुगृहीत आत्मज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति के लिये योग्य है ॥ ८८ ॥

जिससे ब्राह्मण उत्पन्न होता हुआही पृथिवीमें (अधि) जंचा और श्रेष्ठ है। सर्व धर्मोंको ब्राह्मणद्वारा उपदेश किये जानेसे तथा सब जीवोंके धर्मके समूह की रक्षाके लिये समर्थ है ॥ १०८ ॥ जो कुछ पृथिवी में धनादि पदार्थ हैं वह सब ब्राह्मणका अपना स्वत्व है यह बात ब्राह्मणकी स्तुतिके लिये कही है—तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण के अपने स्वत्व के तुल्य है इस से ब्राह्मण ब्रह्माजीके मुख से उत्पन्न होने, और वंश से श्रेष्ठ होनेसे सर्व पदार्थों और द्रव्योंके ग्रहणके योग्य है ॥ १०० ॥ ब्राह्मण जो दूसरेका भी अन्न भक्षण करता है सो अपना ही करता है, दूसरे का जो वस्त्र पहरता है और जो दूसरेका पदार्थ लेकर औरके अर्थ देता है वह भी ब्राह्मणका अपना ही पदार्थ है ऐसा होनेसे ब्राह्मणकी कृपा ही से और सब लोग भोजनादि करते भोगते हैं ॥ १०१ ॥

इत्यादि श्री महाराजाऽधिराज महर्षि श्रीमनुभगवान् ने ब्राह्मणोंकी प्रशंसा करते हुए देवता और पितरोंको यज्ञ में “हव्य” अन्न और आद्य “कव्य” अन्न पहुंचाने के लिये तथा वेद प्रतिपादित धर्म का सत्योपदेश करने के लिये इस पृथ्वी पर ब्राह्मणों को ही मुख्य भूदेव ठहराकर सार्टीफिकेटरूप दूकरारनामा लिखदिया है इसी कारण यज्ञ और आद्यादिमें ब्राह्मणोंके प्रति आदर सत्कार धूर्वक निमन्त्रण देकर भोजनादि दान देने की अन्यन्त आवश्यकता

है । इसलिये प्रथम भूदेव ब्राह्मणोंका पूजन सत्कार करके पीछे यथाशक्ति अनुसार भले ही अपने मित्र वा अन्य किसी अनायादिका भोजनसे सत्कार करना चाहे तो करे यही वेदादि धर्मशास्त्रोंका मुख्य सिद्धान्त है ॥

समाजी—श्रीपरिणित जी । महाराज ! यह तो ठीक सार्टफिकेट रूप अच्छा माननीय इकरारनामा सुनाया परन्तु इसमें मुझे और भी बड़ा सन्देह हुआ है कि आद्वादि शुभकर्मों में सुपात्र, विद्वान् तथा योग्य ब्राह्मणको ठीक २ देखकर निमन्त्रण देना चाहिये कि नहीं; चाहे वो कैसा भी हो ? अर्थात् मद्य मांसाहारी-व्यभिचारी-निन्दित आचरण वाले मूर्खों को भी केवल उस के नाम मात्र ब्राह्मण होने से दिया जाय ? ॥

सनातनी—महाशय जी ! यह आपका सन्देह बहुत सत्य अच्छे साररूप निर्णय कराने वाला है । परन्तु आप निष्पक्षपाती हो कर समयको विचार करके आद्वा में अधिकारी और अनाधिकारी ब्राह्मणों को सुनो । यथा मनु० अध्याय ३ में—

श्रोत्रियायेवदेयोनि हृव्यकव्यानिदातृभिः ।  
अर्हत्तमायविग्राय तस्मैदत्तं महाफलम् ॥१२८॥  
एकैकमपिविद्वांसं दैवेपित्र्ये च भीजयेत् ।  
पुष्कलंफलमाप्नोति नामन्त्राज्ञान्वहूनपि ॥१२९॥

दूरादेवपरिक्षेत ब्राह्मणं व्रेदपारगम् । .  
 तार्थंतहव्यकव्यानां प्रदानेसोऽतिथिःस्मृतः ॥१३०॥  
 सहस्रंहिसहस्राणामनुचां यत्रभुजते ।  
 एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हतिधर्मतः ॥१३१॥  
 ज्ञानोत्कृष्टायदेयानि कव्यानिचहर्वीषिच ।  
 नहिहस्तावसृग्दिग्धो रुधिरेणैव शुद्धयतः ॥१३२॥  
 यावतीयसतेयासान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।  
 तावतोयसतेप्रेत्य दीपशूलष्टर्योगुणान् ॥१३३॥  
 नश्राद्वेभोजयेन्मन्त्रं धनैःकार्यैऽस्यसंग्रहः ।  
 नारिन्मित्रंविद्यात्तंश्राद्वेभोजयेहद्विजम् ॥१३४॥  
 सम्भोजनीसाभिहिता पैशाचीदक्षिणाद्विजैः ।  
 इहैवासतेतुसालोके गौरन्धेवैकवेशमनि ॥१४१॥  
 यथेरिणीवोजमुप्त्वा न वप्तालभतेफलम् ॥  
 तथाऽन्तर्चिह्निर्देत्वा नदातालभतेफलम् ॥१४२॥  
 दातन्प्रतिग्रहीतंश्र कुरुतेफलभागिनः ।  
 विदुपेदक्षिणादत्वा विधित्वंप्रेत्यचेहच ॥१४३॥  
 यत्नेनभोजयेच्छाद्वे वहुचंवेदपारगम् ।  
 शाखान्तगमथाध्वर्युच्छान्दीगन्तुसमाप्तिकम् ॥१४४॥  
 एपामन्यतमो यस्य भुज्ञीत श्राद्वमर्चितः ।  
 पितॄणांतस्यतृप्तिःस्याच्छाश्वतीसापूर्णीरुषी ॥१४५॥  
 नब्राह्मणंपरिक्षेत देवेकर्मणि धर्मवित् ।  
 पितॄघेकर्मणितुप्राप्ते परिक्षेतप्रयत्नतः ॥१४६ ॥

ये स्तेन पतित कङ्गी वा ये चना स्ति कवृत्तयः ।  
 तान्हव्य कव्ययोर्विं प्रान्त न हाँ भनु रत्र व्रीत् ॥१५०॥  
 जटि लं चाऽनधीयानं दुर्वल क्रित वतथा ।  
 याजयन्ति च ये पूर्णां—स्तांश्च श्राद्धै न भोजयेत् ॥१५१॥  
 चिकित्सकान्देवलकान्मांस विक्रयिण स्तथा ।  
 विषणी न च जीवन्तो वर्ज्याः स्युहं द्वय कव्ययोः ॥१५२॥  
 ब्राह्मण स्तव न धीयान स्तु गाऽग्निं रिव शाम्यति ।  
 तस्मै हृष्यं न दातव्यं न हिभस्मनि हृयते ॥१५३॥

इत्यादि संचेपतथा ॥

दाताश्रोंको चाहिये कि वेदपाठी सदाचरण ब्राह्मणको ही देव—पितृकर्म में अम्ब आदि दें, क्योंकि—ऐसेको दिया हुआ दान महाफल देता है ॥१२८॥ देव कर्म ( यज्ञ ) और पितृकर्म ( आद्धूर्में ) में एक द्विद्वान् ब्राह्मण को भी जिमादेय तो बहुत फल पाता है और वेदमन्त्र न जानने वाले वहुतसे ब्राह्मणोंकी भी भोजन करानेसे वह फल नहीं होता ॥१२९॥ वेद में पारंगत ब्राह्मणकी दूरसे ही ( अर्थात् पिता—पितामह आदि भी कैसे श्रेष्ठ गुणीये इस प्रकार ) परीक्षा करे, क्योंकि—वह ब्राह्मण हृष्य कव्य देने का तीर्थरूप होता है और उसको दान देनेमें अतिथि के पूजनके समान फल प्राप्त होता है ॥ १३०॥ जहां वेदको न जानने वाले दशलाख ब्राह्मण भोजन करते हों वहां उन सबके भोजनका फल, भोजन करने

से प्रसन्न हुआ एक ही वेदवेत्ता ब्राह्मण धर्मनुसार दे सकता है ॥१३१॥ पितरोंके निमित्त दियेजाने वाले बलिरूप “कव्य”, और देवता और देवताओं को दिये जाते हुए बलिरूप “हव्य” ज्ञानसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको देय, मूर्खोंको न देय, कर्योंकि-रधिरसे सने हुए हाय रधिरसे ही शुद्ध नहीं होते ॥१३२॥ वेदमन्त्र हीन ब्राह्मण देवकर्म और पितृकर्म में जितने ग्रासों को निगलता है उतने ही धंधकते हुए लोहेके शूल कृष्टि और गोले यजमानको निगलने पड़ते हैं ॥१३३॥ आद्वा में मित्र [ दोस्त को न जिमावे, मित्रोंका संग्रह धनसे करे, जिसको न अपना मित्र समझता हो न शत्रु समझता हो उस ब्राह्मणको ही आद्वामें जिमावे ॥ १३४ ॥ ]

जो पुरुष आद्वाकर्ममें मित्रमरणदलको इकट्ठा करके भोजन कराता है वह पैशाची दक्षिणा कहाती है और यह दक्षिणा ( भोजन दान आदि ) [ जैसे अन्धी गौ एक घरमें ही रहती है उसमेंसे बाहर नहीं निकल सकती तैरे ] इस लोकमें ही रहती है और उससे परस्तोकर्म में पितरों का कुछ उपकार नहीं होता है ॥ १४१ ॥ जैसे ऊबर ( कलारवाली ) भूमिमें बीज घोकर बोनेवाला फन नहीं पाता है तैसेही वेदमन्त्र न जानने वाले ब्राह्मण को हव्य कव्य देने पर दाता को फल नहीं मिलता है ॥१४२॥ विद्वान् ब्राह्मण को

विधिवत् भोजन कराकर दक्षिणा देने पर वह देने वाले और लेनेवाले यानी दोनों यजमान पुरोहित को इस लोकमें और परलोकमें फलका भागी करती है ॥४३॥ आद्व में परमयत्क करके वेद पारंगत ऋग्वेदी ब्राह्मणको, वा सकल शास्त्राके ज्ञाता यजुर्वेदी ब्राह्मणको अथवा समाप्ति पर्यन्त सामवेद जानने वाले ब्राह्मणको भोजन करावे ॥४४॥ इनमेंसे कोई भी ब्राह्मण जिसके आद्व में सत्कारके साथ भोजन पाता है उसके सात पीढ़ी पर्यन्तके पितर तृप्त होते हैं ॥४५॥ धर्मज्ञ पुरुष देवकर्म में ब्राह्मणकी परीक्षा न करे परन्तु पितृकर्म ( आद्व ) में तो यत्र करके परीक्षा करे ॥४६॥ जो चोर-पतित वा नपंसक हों, और नास्तिक भतके वा नास्तिकोंकी जीविका खाने वाले हों तो उन ब्राह्मणोंको मनुजीने देवकर्म तथा पितृयज्ञमें अयोग्य अनधिकारी कहा है ॥४७॥ वेदाध्ययन शून्य ब्रह्मचारी, दुर्बल, ज्वारी, तथा बहुत से यजमानोंको एकसाथ बैठाकर यज्ञ कराने वाले, धन ठहरा कर पूजा करने वाले पुजारी, तथा मांसविक्रेता ऐसे जो निन्दित व्यापार से जीविका करते हों तो उनको देव-पितृकर्ममें न जिमावे ॥४८॥ ४८॥ वेद न पढ़ने वाला ब्राह्मण तिनकों ( तृष्ण-वा-धास ) की अग्निके समान निर्जीव हो जाता है, ऐसे ब्राह्मणोंको हृष्य और कथ्य न देना चाहिये क्योंकि वह राखमें होमा हुआसा वृथा जाता है ॥४९॥

इत्यादि संस्कैपतासे दिखाये वा कहे गये अधिकारी और अनधिकारी ब्राह्मणों को आद्वादि शुभ कर्मों में परम यत्नसे ठीक २ देख विचार करके पितरोंके निमित्त भोजन कराना चाहिये । और नीचे बताई गयी विधिसे आद्वकर्त्ता और भोक्ता इन दोनों को वैसे ही नियमसे रहना चाहिये । यथा मनु<sup>०</sup> अध्याय ३ के १८७ से १८० श्लोक तक—

पूर्वेद्युरपरेद्युर्बा आद्वकर्मण्युपस्थिते ।

निमन्त्रयेतत्त्यवरान् सम्यग्विप्रान्यथोद्वितान् ॥१८७॥

निमन्त्रितोद्विजः पित्र्ये नियतात्माभवेत्सदा ।

नचछन्दांस्यधीयीत यस्यश्राद्वचतद्ववेत् ॥१८८॥

निमन्त्रितान् हिपितर उपतिष्ठन्तितान् द्विजान् ।

वायुवञ्चानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥१८९॥

केतितस्तुपथान्यायं हव्यकव्येद्विजोत्तमः ।

कथञ्जिदप्यतिक्रामन्पापः सूक्रतांवजेत् ॥१९०॥

अर्थात्—आद्वकर्मके प्राप्त होने पर आद्वके दिन से एक दिन पहिले और यदि न होसके तो उसीही दिन जिनके लक्षण कहचुके हैं ऐसे तीन अथवा एक ब्राह्मण को सत्कार पूर्वक निमन्त्रण दे, ॥१८७॥ आद्व में निमन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रणके दिनसे आद्वके दिनकी रात्रि तक नियमसे रहे अर्थात् स्त्री-संग आदि न करे और लालरण करने योग्य काम्य जप सादि के सियाय-बेदका लालरण न करे और

ऐसे आद्ध करने वाला यजमान भी इसीही नियम से रहे ॥१८८॥ क्योंकि—निमन्त्रित ब्राह्मणोंमें पितर श्रद्धार्थ रूप से स्थित होते हैं और प्राणवायुके समान चलते हुएके शाय चलते हैं और बैठने पर सभीय बैठते हैं इसलिये उन ब्राह्मणोंको नियम से पवित्र रहना चाहिये ॥१८९॥ हृष्य कव्यमें शास्त्रके अनुसार निमन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रण को अंगीकार करके यदि किसी कारण \* से भोजन न करे तो उस पाप से दूसरे जन्म में वह शूकर होता है । इसलिये आद्ध करने वाले को भी जिस ब्राह्मणको निमन्त्रण

\* जो ब्राह्मण गरीब यजमानका प्रथम निमन्त्रण पाकर पीछे यदि साहूकार धनाद्य लक्ष्मिय आदि आकर निमन्त्रण दे तो लोभवश्च होकर प्रथम आये उस विचारे गरीब को छोड़कर धनाद्यके पास पहिले जावे और असमर्थ यजमान को छोड़कर समर्थवान् यजमान के पास जाना अर्थात् वह समर्थवान् यजमान शहंकार और धन के नद से कहे कि—ऐ ब्राह्मण । यदि तुम पहिले मेरे पास आद्धभोजनादि खानेको नहीं आते हो तो हम तुमको छोड़कर शन्य किसीको आद्ध खिला देंगे और तुमको शागेके लिये देखेंगे अर्थात् पुरोहित करके नहीं भानेंगे ऐसे लोभदायक यजमानके मदरूप वज्रों पर लोभित होकर जो न्यायपथका परित्याग करता हुआ प्रथम निमन्त्रण दिये हुए उस गरीब यजमानके पास भोजन करने को जो नहीं जाता—वह लोभी—पद्मपाती और दूरपोक वा ठग ब्राह्मण उस लोभ वा काहिलता रूप पाप से दूसरे जन्ममें अवश्य ही शूकर होता है ॥

दिया हो उसीको ही अद्वा ( नम्रता ) से आद्वमें ले आकर भोजन कराना चाहिये ॥ इति ॥

**समाजी—**श्री परिणितजी महाराज ! आप श्री-वरोंने तो ठीक ही सत्यरूपसे आद्वके योग्य और अयोग्य ब्राह्मणोंका वर्णन किया परन्तु आपके कथनानुसार इस वक्त्वे ऐसा वेद पारंगत पूर्ण पवित्र विद्वान् अब मिलना महाकठिन है । और ऐसे शास्त्रोत्तरनियम पालने वाले वेदवेत्ता सदाचारी ब्राह्मणोंके सिवाय अन्य मूर्ख दुराचारी ब्राह्मणको आद्वमें खिलाना अवश्य निषिद्ध है—क्योंकि—धर्मशास्त्रके आज्ञानुसार असंस्कृत मूर्ख ब्राह्मणको आद्वमें भोजन कराना जैसा ही है जैसा कि भस्म ( राख ) में घीकी आहुति निष्फल होती है । इसलिये आद्व कैसे सिद्ध हो सकेगा ? ॥

**सनातनी—**प्रिय महाशयजी ! आप जैसा विचार रखते हो 'वह निःसन्देह सत्य है—परन्तु इस समयानुकूल आप क्षत्रिय—वैश्य वर्गीरह प्रथम अपने गुण—आचरणोंकी तरफ भी कुछ ध्यान देकर न्यायसे सोचो और कहो—कि नहीं, केवल ब्राह्मणोंको ही दोपयुक्त ठहरानेका भूंठा बहाना करके अपने अवश्य कर्तव्य देव—पितृयज्ञादि कर्म करनेसे भागते हो । महाशय जी ! ऐसे आपके [ अवश्य कर्तव्य कर्म का त्याग ( लोप ) करने वाले ] पाप—रूप निवाल वचन आप जैसे सज्जे क्षत्रिय वैश्यों के सन्तान के मुख से

निकलें—तो इससे ज्यादा अपने बड़ोंकी [ ' पुर्णभक्ति नम्रताभावसे होनेवाले अश्वमेध राजसूयादि यज्ञोंमें योई हुई ] वीरता और अतिष्ठामें धब्बेलगाने वाले और कौनसे वचन बाकी रहे ? ! आ हा ? ! “विनाशकाले विपरीतबुद्धिः” इस महाबाक्य के अनुसार ठीक देखा जाता है कि कलि महाराजके प्रताप से बुद्धि और वीरता तथा नित्य कर्मकाण्डोंमें प्रेम विपरीत ( उलटा ) हो गया ? ! ? तौभी है क्षणि मुनियोंके सन्तानो ! और सच्चे शूरवीर पवित्र शक्ति—वैश्योंके पुत्रो ? अब जरा जागो और विचारहृषी आंखसे देखो—सोचो कि हमारे ही जैसे निर्वल संतान पर दयाके भरडार महर्षि श्रीमनु महाराज ने अपने दयाभाव से अवश्य करने योग्य श्राद्धादि कर्मोंकी रक्षा होनेमें कलिकालके समय योग्य और अयोग्य ब्राह्मणादिकोंका किस तरहसे निर्णय करके बतलाया है कि—

अन्येकृतयुगेऽधर्मा—स्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।

अन्येकलियगेनूणां युगहासानुरूपतः ॥ द५ ॥

तपःपरंकृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।

द्वापरेयज्ञमेवाहु—र्दानमेकंकलौयुगे ॥ द६ ॥

अर्थात्—सत्ययुग में और धर्म, त्रेतामें और, द्वापरमें और तथा कलियुगमें और । त्रेतादि युगोंमें युगोंकी हीनता ( घटती—बढ़ती ) होनेसे धर्म और अधर्म की भी विलक्षणता हो जाती है ॥

As the vegetable kingdom increases in thier beauty colours and nourishment at thier due time, such as "spring season" and less in the other seasons similarly in the times of Satyayuga spirituality and religions are more Predominants and very much less in respective Yugos Treta, Dwaper and much less in Kaliyuga"

**अर्थात्-** जैसे जृतुओंमें पदार्थोंके स्वभाव बदल जाते हैं तैसे ही युगोंमें भी शक्तियोंके फेरफार से पदार्थोंका स्वभाव बदल जाता है और रस, क्रस, शक्ति-आकार-उभर और कर्मफल आदि भी युगों के बदल जानेसे बदल जाते हैं । यद्यपि तपश्चर्या-आत्मज्ञान-यज्ञ और दान वगैरह सब कर्म सत्य आदि सब युगोंमें सदा सेवन योग्य हैं तथापि सत्य-युगमें तपश्चर्या प्रधान (मुख्य) और अत्यन्त फलदायक है । त्रेतामें आत्मज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान ही मुख्य फलदायक है । इत्तिये वेदशास्त्र पठन और उनके अनुसार धर्म कर्म-अनुष्ठान करनेमें जो हीनता हुई है वह केवल ब्राह्मणोंमें नहीं किन्तु सब वर्णश्रिमोंमें कलियुगके प्रभावसे समान ही हो रही है । फिर केवल ब्राह्मणोंका ही अधिकार मनुस्मृतिके अनुसार देखा जावे तो किन्तु अयने आपकी ओर भी सब लोगोंसे दृष्टि की जावे कि मुझमें विशेष धर्मोंकी स्थिति तो किनारे रही परन्तु मनुष्यमात्रका सदा आचरणीय सामान्य धर्म भी कोई है वा नहीं । किन्तु केवल ब्राह्मणों के ही

अधिकार का निर्णय करने पर और लगाना और अपनी और कुछ नहीं देखना यह बुद्धिमानों और न्यायवर्ती विचारवानोंकी रीति नहीं है । क्योंकि श्राद्धादि कर्म करने वाले क्या ब्राह्मण क्या और जातियोंके सब मनुष्यमात्र । अर्थात् सब वेदमता-नुयाइयोंको सत्-धर्मका आचरण अपने वर्णाश्रमके मुताबिक ठोक २ करना चाहिये । जैसा कि—महा-भारत अनुशासन पर्वमें लिखा है कि—

**न्यायार्जितधनस्तत्व-ज्ञाननिष्ठोजितेन्द्रियः ।**

**श्राद्धकृतसत्यवादीष सत्कर्ममुच्यतेनरः ॥ १ ॥**

अर्थात् न्यायरीति से जो धनसंचय करता है, ईश्वरके तत्वज्ञानके विचार में जिसका निश्चय है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको खोटे विषय भोगोंसे रोका हुआ है अर्थात् गृहस्थाश्रमके धर्मोंमें दृढ़ स्थित है तथा श्राद्धादि देव-पितृकर्म जो सदा करता है और सत्य वचन बोलता है तथा इष्टापूजादि सत्-कर्म करता है वह मनुष्य सब कोई चाहे किसी भी वर्ण का हो तो जन्म भरणकृप संसारक्लेश से छूट जाता है । यही श्लोक याज्ञवल्क्यस्मृतिमें है परन्तु कुछ भेद है । इस श्लोक में लिखे श्राद्धादि सत्कर्म करने वाले सब मनुष्योंमें जो २ गुण चाहिये सो वे ही लोग न्यायदृष्टि से अपने २ में देखें कि उन में ऊपर लिखे गुण कितने और कहांतक हैं—तो सचने से निश्चय हो जायगा कि इन गुणोंमें से योड़ा

अंश भी ज्ञाव के ग्रादुकर्मादि करने वाले सब मनु-  
ष्योंमें कठिनतासे प्राप्त हो सकेगा । तो फिर के-  
वल ब्राह्मणोंके ही धर्म का निर्णय करनेमें कठिनद्व  
होकर प्रवृत्त होना और अपनी ओर [ कि कैसे २  
कुकर्म सेवन करने और कैसे २ अन्यायोंसे धन सं-  
चय करना और शास्त्रोक्त्त सदाचार किंचित् भी  
कभी आचरण नहीं करना ] दृष्टिमात्र नहीं करनी  
यह कौन न्याय और बुद्धिमत्ताकी बात है । महा-  
शय जी ! ब्राह्मणोंमें तो कोई न कोई कुछ न कुछ  
वेदशास्त्र पढ़ेहुए और उसके अनुसार अपना धर्म  
कर्म अनुष्ठान करने वाले शायद मिलही जावें प-  
रन्तु ऐसे प्रश्नकर्ता महात्मा को अपनी ओर अपने  
साथियोंकी ओर दृष्टि करके न्यायसे सोचना चा-  
हिये कि वे लोग सनातनधर्मको रीति से नित्यक-  
संब्य धर्म कर्मका अनुष्ठान (सेवन) करना तो जाने  
दो परन्तु उनके नवीन मतके गुरु के उपदेश किये  
अन्यों के अनुसार भी कितने संस्कार उन्हों के हुए  
हैं और होते हैं । और कितना वेद और वेदाङ्गों  
का तथा और शास्त्रोंका अध्ययन और प्रतिदिनके  
सन्ध्यादि पंचयज्ञ कर्म कितने किये जाते हैं कि  
जिन महाशयोंको दो चार वेदमन्त्रोंके स्वरूप सहित  
गुद्ध पाठमात्र उच्चारण करनेका ज्ञान नहीं है तो  
उनका गर्व जानने की तो क्या बात है । तो इन  
सब ऊपर लिखे वा कहे कारणोंसे यदि विद्वान् स-  
त्कर्मी पाव ब्राह्मण जहांतक ग्रादुकर्म करनेके वास्ते

मिलें तहांतक वे अवश्य खोज करके भी आद्वकर्ममें  
लाने योग्य हैं—परन्तु जो समयके अनुसार अधिक  
उत्तम अधिकारी पात्र ब्राह्मण न मिले तो धर्मरक्षक  
महर्षि मनु भगवान् ने अध्याय २ श्लोक ११८ में—  
गायत्रीमात्रसारोऽपि वर्णविप्रः सुयन्त्रितः ।

नायंत्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशोसर्वविक्रयो ॥११८॥

अर्थात्—केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी  
यदि ( सुयन्त्रित ) शास्त्रनियमित अर्थात् अभव्य भ-  
क्षणादि रहित और व्यभिचारादि कर्मसे रहित है  
तो वह योङ्गा पढ़ाहुआ भी ब्राह्मण समयानुसार अ-  
त्यन्त श्रेष्ठ और आद्वादि कर्ममें योग्य पूजनीय है।  
परन्तु ( अयंत्रित ) जो निषिद्ध मद्यमांसादि भक्षण  
करने वाला और वेचने वाला है तथा नित्य कर्त्त-  
व्य संध्योपासनादि कर्म नहीं करने वाला और व्य-  
भिचारी वह यदि वेदवेत्ता महान् परिषडत भी हो  
तो भी वह श्रेष्ठ नहीं और न आद्वादि कर्ममें लाने  
योग्य है। अब विचारपूर्वक देखो कि अन्तमें श्री म-  
हर्षि मनु भगवान् ने कम से कम केवल गायत्रीमात्र  
जानने वाले मुलाक्षण सुपात्र वैष्णव ब्राह्मण को ही  
श्रेष्ठ और आद्व के योग्य सिद्ध किया है। इसलिये  
महर्षि श्रीमनुजीकी आज्ञा से अत्यन्त विद्वान् धर्मज्ञ  
ब्राह्मणके अभाव में केवल गायत्रीमात्र जानने वाले  
और सदाचारी सुपात्र ब्राह्मण को ही सत्कारपूर्वक

निमन्त्रण देकर श्राद्धमें श्राद्धासे भोजन कराकर पि-  
तृयज्ञको सिद्ध करना हम वैदमतानुयायियोंका मुख्य  
कर्तव्य है । और जंगल वा म्लेच्छादि देशमें सर्वथा  
ऐसा केवल गायचीमात्र जानने वाला भी यदि सु-  
पात्र ब्राह्मण न मिल सके तो—

**अलाभेन्नाह्नणस्यैव कीशःकार्योद्धुःप्रिये ।**

प्रभासखण्ड वाक्य, ।

**तथा=विधायवादर्भवटून् आसनेपुसमाहितः ।**

**प्रेषानुप्रैषसंयुक्त=विधानंप्रतिपादयेत् ॥१॥**

महर्षि श्री देवलस्मृति,

अर्थात्—सुपात्र ब्राह्मण के अभाव में दर्भा की  
बोटी प्रतिमाएं बनाकर उन को ही ब्राह्मणरूप में  
कल्पित करके पवित्र आसनों पर बैठाकर श्राद्ध के  
मन्त्रोंसे ( प्रैषानुप्रैष ) एव गन्ध—सुगन्ध—धूप दीप  
नैवेद्यादिकों से अर्थात् गंध ( चन्दन ) पुष्प धूप  
दीप भोजनादि को उन कल्पित ब्राह्मणों के प्रति  
श्रद्धासे अपेण करके आप ही श्राद्धकर्मका अनुष्ठान  
पूर्ण करे । यदि वैसा भी न हो सके तो श्रीकात्या-  
यनस्मृतिके वचनानुसार—

**आपद्यनग्नौतीर्थेच प्रवासेपुत्रजन्मनि ।**

**आमश्राद्धप्रकुर्वीत भार्यारजसिसंक्रमे ॥ १॥**

**अनग्निरधनोवापि तथैवद्यसनान्वितः ।**

**आमश्राद्धद्विजःकुर्याद् वृपलस्तुसदैषहि ॥ २ ॥**

अर्थात्—श्रापत्कालमें, तथा अग्नि के न मिल सकनेमें, तीर्थमें प्रवास यानी मुसाफरीमें, पुच्छजन्म के समयमें और रजोधर्ममें तथा संक्रान्ति अर्थात् पुण्यकालमें “शामश्राद्ध” यानी कच्चा सीधा लेकर पितरोंके निमित्त यज्ञोपवीत वासपाशवं करके “स्वधा पितृभ्यः इदं अग्नं समर्पयामि” ऐसा उच्चारण करके मुपाच्च सदाचारी गरीब ब्राह्मणके घरमें वह अग्न देकर श्राद्धकर्म पूरा करे परन्तु शूद्रजाति हमेशा “शामश्राद्ध” करे अर्थात् कच्चा सीधा संकल्प करके ब्राह्मणोंको दे । यदि इतना भी न हो सके तो—  
सर्वाऽमावेक्षिपेद्गन्नौ गवेदद्यादथाप्सुवा ।  
नैवप्राप्तस्यलोपोऽस्ति पैतृकस्यविशेषतः ॥ १ ॥

महर्षि देवलस्मृति ॥

अर्थात्—कुछ भी नहीं हो सके तो भी किंचित् कच्चा वा पकाया हुआ भोजन पितरोंके नामसे अग्निमें, अथवा जलमें वा गौको देवे परन्तु पितृकर्म का सोप न करे । और यदि भनुष्यदरिद्री (कंगाल) असमर्थ होनेके कारण इतना भी न कर सके तो—  
वृहम्नारदीय पुराणशास्त्रके वचनानुसार—  
अथवारोदनंकुर्यात्—अत्युच्चैर्विजनेवने ।

दरिद्रोहंमहापापी वदेदितिविचक्षणः ॥ ॥

वृहम्नारदीय पुराण अध्याय ५६ ॥

इस नारदीय वाक्यानुसार श्राद्धके दिन निर्जन बनमें जाकर “मैं महापापी दरिद्री (कंगाल) हूं”

ऐसे दीन वचन बोलकर पितरोंसे क्षमा मांगे परन्तु पितृकर्मका त्याग न करे । और यदि रोदन करनेमें भी संकोच करे तो—

**सर्वाभावेषनंगत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः ।**

**सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैःपठिष्यति ॥५७॥**

नमेऽस्ति वित्तं न धनं न चाऽन्यत्, आद्वस्य योग्यं स्वपितृन्ततोस्मि । तृप्यन्तु भक्तया पितरो मर्यैते भुजौततोबत्मनिमारुतस्य ॥५७॥

श्रीबाराहपुराण अध्याय ४३ में ॥

अर्थात्—बन में जाकर दोनों भुजाओं को ऊपर करके नम्रता और दीनभावसे हाथ जोड़कर सूर्यादि लोकपालोंके सन्मुख अपनी कुक्षि दिखाकर उज्ज्वर से कहे कि—हेपितृदेवो ! मेरे पास इतना अन्न, धन तथा अन्य कोई भी आद्वोपयोगी—पदार्थ कुछ भी नहीं है—इसलिये मैं अपने पितरोंको केवल नमस्कार पूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि हे सूर्यादि लोकपालो ! इस मेरी भक्तिरूप प्रार्थना से मेरे पितर तृप्त होकर मुझपर प्रसन्न रहे ॥ इति ॥

समाजी—श्रीमान् परिण्डत जी महाराज ? यह मुझे आप श्रीवरों ने ऐसा न्यायरूप युक्तियुक्त ब्राह्मणोंका निर्णय करके बतलाया है कि जिस से अब मुझे कोई भी सन्देह बाकी नहीं रहा और आपत्ति में भी आद्व करनेका ऐसा धर्मशास्त्रोक्त उत्तम सवं

मान्य मार्ग वतलाया कि बस अब मैं पूर्णकृतार्थ हुआ हूँ॥

हे मिथ परमपूज्य परिणतजी ! परब्रह्म परमात्मा आप जैसे धैयेवान् सुशील विद्वान् सत्योपदेशक ब्राह्मणकी सदा प्रतिष्ठा यश बढ़ाये और आप श्रीवर्णोंको सदा प्रसन्न रखें कि जिन श्रीवर्णोंने नितान्त परमार्थरूप महान् उपकार करके मेरे और चलिक अन्य मेरे समाजो भाइयों के तथा आस्तिक साधारण सनातनी भ्राताओंके भी अति कठिन सन्देह कृप अन्धकारको प्रबलशास्त्र प्रमाण और अकाटव सद्युक्तियुक्त वचनों से ऐसे दूर किया है कि जैसे सूर्यनारायणके प्रखर तेजसे संपूर्ण जगत् का अन्धकार नाश व दूर हो जाता है—इसलिये मैं इस आद्विषयमें तो निःसन्देह आप धर्मरक्षकको गुरु समझ कर आप सद्गुरज्ञोंके चरणकम्लों में प्रेम से शिर नवाता हूँ । हे प्रभो ! मुझपर क्षमा करो और मुझको आशीर्वाद देओ ॥

सनातनी—मिथ महाशय जी ! सदा सुखी भव ?  
आयुष्मान्—भव ! ?

इति श्री श्राद्धपितृमीर्मांसायां श्राद्धकर्मणि

ब्राह्मणानामधिकाराऽनधिकारनिर्ण-

यने समाप्तोयं पष्ठोऽध्यायः ॥

— श्रीसाम्बशिवार्पणमस्तु ॥

ओ३म्—शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

“ॐ—नमोऽन्तर्यामिणे”

## ॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

मेरे प्रिय आधुनिक आर्यसमाजी महाशयोंको  
निम्नदिग्भिंत आद्विषयक चिश्टत् ( ३० ) प्रश्नों के  
ग्रास्त्रप्रमाण युक्तियुक्त उत्तर देनेके लिये प्रार्थना ॥

प्रश्न १—स्वा० दयानन्दजीने सन् १८७५ के सत्या-  
र्यम्भकाशमें “जितने जीवित हों उनके नामसे तर्पण  
न करे किन्तु जो २ मरणये हों उनके नामसे तर्पण  
करे” लिखा है सो इसको तुम प्रमाण क्यों नहीं मा-  
नते ? । यदि मानते हो तो जीवितोंको आद्वतर्पण  
कहना मिथ्या क्यों नहीं है । यदि कहो कि स्वा०  
द० ने ऐसा नहीं कहा और न लिखा किन्तु छपाने  
शोधने वालोंने वैसा बनादिया है तो क्या तुम में  
से कोई भी समाजी महाशय वेद पुस्तक हाथमें ले-  
कर शपथसे कहदेगा कि यह सत्य है । अर्थात् स्वा-  
मीजीने नहीं लिखा किन्तु छपाने शोधने वालोंने  
ही मिलादिया ॥

प्रश्न २—जब अथर्ववेद १८ । १ । ४४ ॥ ( असुं य  
ईयुः ) मन्त्रांशका अर्थ प्राणवायुमात्र सूहमदेहधारी  
पितर निरुत्तके अनुसार सिद्ध हो चुका है तो जी-  
वित स्यूल देहधारियोंमें वह अर्थ कैसे घट सकेगा ।  
क्या उससे मृतमितर सिद्ध नहीं हैं ? तथा अथर्ववेद

१८ । २ । ४८ ( य आविविशुर्वर्णन्तरिक्षम्० ) जो पि-  
तर बड़े अन्तरिक्ष स्रोक में प्रवेश करत्तुके सो क्या  
तुम्हारे जीवित ही पितर अन्तरिक्ष आकाशमें प्रवेश  
कर सकते हैं ? । यदि नहीं कर सकते तो मृतपि-  
तरोंका श्राद्ध तर्पण उक्त मन्त्रसे सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥

प्रश्न ३—जब अथर्ववेद १८ । ३ । ४४ ॥ ( अग्नि-  
ष्वात्ताः पितर शह गच्छत ) यहाँ हविष् खानेके लिये  
उन पितरोंको बुलाया गया है कि जो मरणानन्तर  
अग्निमें जलाये गयेथे । क्योंकि ( यानग्निरेव दह-  
न्तस्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः ) जिनको जलाता  
हुआ अग्नि चाट जाता है वे पितर अग्निष्वात्त  
कहाते हैं यदि अग्निष्वात्त पदका प्रथ्य शतपथ ब्रा०  
में लिखा है तब वे अग्निष्वात्त पितर जीवित कैसे  
हो सकते हैं । इस प्रभाणसे भी मरोंका श्राद्ध होना  
सिद्ध क्यों नहीं है ? क्या 'तुम्हारे मतमें जीवित ही  
जलादिये जाते हैं और क्या जलजाने पर भी वे  
लोग जीवित ही बने रहते हैं ? यदि ऐसा हो तो  
दाहकर्म होजाने पर किसी समाजी को क्या जी-  
वित दिखाओगे ? ॥

प्र० ४—अथर्ववे० १८ । ३ । ७२ ( ये ते पूर्वपरा-  
गताः ) जो पहिले पितर पूर्वकालमें व्यतीत होगये  
उनके लिये भी तर्पण करना चाहिये । क्या इस प्र-  
भाण से मरेहुये पितरों का श्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं  
होता ? और क्या ऐसा कथन जीवितोंमें घट सकता है ।

प्र- ५-श्वर्यवं० १८ । ४ । ४८ । ( मृताः पितृषु  
संभवन्तु ) भरे हुए पितर पितृयोनिमें प्रगट हों उ-  
न्हींके लिये आद्व तर्पण होता है । क्या यहाँ मूल-  
वेदमें मृत शब्द नहीं ? और क्या इससे मरोंका आद्व  
तर्पण सिद्ध नहीं होता ? ॥

प्र०६-श्वर्यवं० १८ । ४ । ६३ ( अधामाचि पुन-  
रायातनो गृहान्० ) यहाँ पार्वणादि भासिकआद्वमें  
पितरों का विवरण करके महीनेभर बाद फिर बु-  
लाना कहा है । सो क्याँ जीवित पितरोंको तुम म-  
हीने २में एकही बार भोजन देते हो ? क्या वे ऐसा  
करनेदे जीवित रह सकते हैं ? यदि हाँ कहो तो  
ऐसे कौन हैं ? और ( नमः पितृभ्यो दिविषद्भ्यः० )  
श्वर्यवं० १८ । ४ । ८० । दिवि नाम स्वर्गज्ञोक में  
रहने वाले पितरोंको यहाँ नमस्कार कहागया है ।  
सो क्या जीवित ही समाजियोंके पितर स्वर्गमें जाते  
हैं ? यदि कोई जीवित स्वर्गमें जाते नहीं दीखें तो  
इससे मरोंका आद्व करना सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥

प्र० ७-क्या तुम लोग ( अपराह्णः पितृणाम् )  
इस शतपथ प्रभालके अनुसार भूखे पिताको भी दो-  
पहरके बाद ही भोजन दोगे ? और मनुष्यके भो-  
जनका समय मध्यान्ह लिखा है तो क्या तुम्हारे  
जीवित पितर मनुष्य नहीं हैं ? जब कि मनुष्य हैं  
तो मनुष्यों और पितरोंका भिन्न समय क्यों रखा  
है ? क्या इससे जीवित मनुष्यों से पितरोंका भिन्न

होना सिद्ध नहीं ? तथा जब शतपथ काण्ड २।३ ४। में लिखा है कि ( तिरद्वयवै—पितरो मनुष्येभ्यः ) मनुष्योंसे पितर छिपे नाम अदृश्य होते हैं । सो क्या जीवित मनुष्य पितर मनुष्यों से कभी छिपे नाम अदृष्ट रह सकते हैं ? क्या इससे मृतपितरोंके लिये आङ्ग स्पष्ट सिद्ध नहीं है ? एवं शतपथमें पिण्डदान के बाद पीठ फेर लेना लिखा है सो क्या तुम जी-वित पितरोंको भोजन परोस कर उनकी ओर पीठ करदेना ठीक समझते और वैमा ही करते हो ? ॥

ग्रन्थ ८—यदि आपके ही मतमें स्वामी दयानन्द जीने स्वयं संस्कारविधि छवीं सं० १८४९ के पृष्ठ १०४ समावर्तनसंस्कारप्रकरण में लिखा है कि “हाथ में जल लेकर अपसव्य मानी यज्ञोपवीत वासपाशवं करके दक्षिणादिशाकी तरफ मुख करके “ॐ पितरः शु-न्धध्वम्” इस मन्त्रसे वह जल पृथ्वी पर छोड़े” सो क्या तुम इससे भी जीवितोंको जलदान मानोगे । यदि जीवितों का ही तर्पण मानना चाहते हो तो ( भूमि पर जल छोड़ ) का काटकर ( पिताको भूमि में लिटाकर उस के मुख में जल छोड़े ) ऐसा क्यों नहीं बना देते हो ? क्या स्वा० द० के ऐसा लिखने से अब भी मर्तोंका तर्पण मानना सिद्ध नहीं है ? ॥  
 ग्रन्थ ९—संस्कारविधि सं० १८४९ पृष्ठ १७८—गृहाश्रम प्रकरणमें बलिवैश्वदेवविधि—( ओऽम् पितृभ्यः स्वधा-विभ्यः स्वधानमः ) इस मन्त्रसे एक ग्राम दक्षिणमें

रखनेको लिखा है सो यह ग्राम वा भाग किनको दिया जाता है ? और दक्षिणमें क्यों धरा जाता है ? क्या इससे मृतश्चाद्ध मानना सिद्ध नहीं है ? ॥

प्र० १०—वृग्वेदादि भूमिकामें स्वा० ३० ने “अग्निष्वात्” का अर्थ अग्निविद्याको जानने वा अग्निसे विशेष कायं साधन करने वाले अंजनके डार्डवर आदि किया और आगरे शास्त्रार्थ में स्वा० तुलसीराम आदि समाजी उपदेशकों ने जलेहुए मुद्रा के परमाणु अर्थ किया इन परस्पर विरुद्ध दोनोंमें कौन अर्थ सत्य और दो में कौन एक मिथ्या है ?

प्र० ११ क्या समाजी लोग अग्निष्वात् पितरों को दुलानेके समय काले २ अंजनके डार्डवरोंका आवाहन करते हैं अथवा प्र० तुलसीरामके किये अर्थात् नुसार जले हुए मुद्रके परमाणुओंको ( अग्निष्वातः पितररह गच्छत सदसदसदत ) कहते हैं कि हे जले हुए मुद्रके परमाणुओं ? तुम लोग यहाँ आओ, अपने २ आमन पर बैठो और भोजन करो तथा भोजनके बाद हमको बहुतसा धन दे जाओ । सो क्या मुद्रके जले हुए परमाणु आते, आमनोंपर बैठते, और भोजन करके धन दे जाते हैं ? इससे क्या समाजियों के पितर मुद्रा के ‘जलेहुए परमाणु सिद्ध नहीं हैं ? ॥

प्र० १२—सृग्वेद भाष्यभूमिकामें स्वा० ३० ने प्रतिज्ञा की है कि हम निरुक्त-शतपथादि प्राचीन

श्रावण्यों के अनुकूल वेदार्थ करते और मानते हैं, फिर अग्निष्ठवात् पदका अर्थ शतपथ से विस्तृद्ध मन-माना व्याकरण की स्वरप्रक्रिया से भी विस्तृद्ध किया है—सो मिथ्या क्यों नहीं ? और ऐसा करनेसे स्वाठा द० की पहिली प्रतिज्ञाका खण्डन क्या नहीं होगया ? इसका तुम क्या जवाब रखते हो ? ॥

ग्रन्थ १३—सत्यार्थ—ग्रकोश छपे सन् १८८७ के पृष्ठ ८८ वें में स्वामी द० जीने आद्यतर्पण का अर्थ करके अखीर में कहा है कि यह जीवितों को है मरों को नहीं, और फिर ऋषितर्पण पितृतर्पण लिखके इस से आगे लिखे अर्थ सिद्ध किये हैं कि—११ ग्यारह ग्रकार के पितर ये हैं—

नं० १—जो परमेश्वर परमात्मा और पदार्थविद्यामें निपुण हो वह ( सोमसद )

नं० २—जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि के जानने वाले हों वे ( अग्निष्ठवात् )

नं० ३—जो उत्तम विद्या बुद्धि युक्त उत्तम व्यवहारमें स्थित हों वे ( बर्हिषद् )

नम्बर ४—जो ऐश्वर्यके रक्षक महोपधिके पान करनेसे रोग रहित और अन्य के ऐश्वर्य रक्षक, औपधियों को देकर रोग नाशक हों वे ( सोनपा ) पितर हैं ॥

नम्बर ५—जो मादक ( नशेकारक ) और हिंसाकारक द्रव्योंको छोड़कर भोजन करते हैं वे ( हविर्भुज ) पितर ॥

नम्बर ६—जो जाननेके योग्य वस्तुके रक्षक और घृत दुधादि खाने स्थीने वाले हों वे ( आज्ञयपा )

नम्बर ७—जिनका अच्छा धर्म करनेका सुखरूप समय हो वे ( सुकालिन् ) पितर हैं ॥

नम्बर ८—जो दृष्टोंको द्रश्व और श्रेष्ठोंका पालन करने हारे न्यायकारी हों वे ( यम ) ॥

नम्बर ९—सन्तानोंके अन्न और सुत्कारसे रक्षक व जनक हों वे ( पिता ) ॥

नम्बर १०—जो अन्न और सुत्कारोंसे सन्तानोंका मान करें वे ( माता ) ॥

नम्बर ११—अपनी स्त्री, भगिनी, सम्बन्धी और एक गोवका तथा अन्य कोई भद्रपुरुष व वृद्ध हो तो उन सबको अत्यन्त श्रद्धासे उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर पानादि देकर अच्छे प्रकार जों तृप्ति करना है वह श्राद्ध व तर्पण कहा जाता है ॥ इति ॥

अब सभाजी महाशय यहां पर स्पष्टरूपसे बतावें कि नम्बर एक १ के पितरोंमें पदार्थविद्या जानने वाले चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान या अंगरेज, अथवा सभी ही पितर होंगे वा जहीं ? ॥

नम्बर २ दूसरेके पितरोंमें श्रिनि और विद्युत् ( यानी विजुली ) आदि को समझकर उससे टेली-ग्राम और टलीफोन आदि काम करने व यनानेवाले तारपाथू थगैरह और अग्नि से रेत का अम्बुन तथा और मरीन पगैरह पनाने व चलाने वाले इन्हिन-

यर, गार्ड, ड्राईवर और भोइलर फिटर बगैरह आप के पितर होंगे या अन्य कोई ? वयोंकि इस वक्त अग्रिन और विजलीको ज्यादा समझने व काममें लाने वाले तो ये ही उपरोक्त विलायत के महाशय और हिन्दुस्तानके मिस्ली बगैरह हैं ॥

नम्बर ३ में तो श्रंगेजों के सिवाय और कोई होंगे ही नहीं । वयोंकि वे ही १०० में ८८ तक पढ़े हुए और सायन्समें इस वक्त सबसे बढ़े चढ़े हैं कि जिन बुद्धिमानोंकी राह लेकर व उन्होंके रिवाजको प्रसंद करते हुए अपनी समाजिनी लेडियोंको अंगरेजी लेडियोंके समान छूट घूमने फिरने और जलसों ( उत्सवों) में सहस्रों मनुष्यों के बीच बैठने व लेकचरारी करनेसे स्वतन्त्रता देकर हमारी भारतीरांगनाओंके लजातन पतिव्रत धर्मभर्यादा को तोड़ते हुए स्त्रियोंके प्ररम लज्जारूप आभूषणोंको अपने ही हाथोंसे छीन रहे हैं कि जिसका नतीजा अब यह निकल रहा है कि वे समाजिनी विदुषियें नियोग और विधवाविवाह करना मंजूर करके भारह ११ पति तक खसम करना चाहरही है और दूसरा खसम तो बहुतेरी खान्दानी समाजिनी विधवाओं ने किया है वल्कि पंडित तुलसीरामादि समाजी उपदेशकों ने तो इस निन्दित, व्यभिचाररूप नियोग वा विधवाविवाह पर और भी जोर लगाकर पचकन्याचरित्रादि \* छोटे छोटे ट्रैक्ट रचकर प्रसिद्ध करते हुए उन तर्पत विदुषियोंको प्रसन्न किया है । वाह ! वाह ! ! ये ही तो

इन आर्यभासियोंके धर्म हैं ! ! ! अफ्रोस ! और और लज्जा ! हे प्रभो ! हे नाथ ! तू ही भारतवीरांगनाओंके पतिव्रतधर्म व सनातन आर्यमर्यादाकी रक्षा कर ! अस्तु ॥

नम्बर ४ में शायद डाक्टर और हकीम ही होंगे । क्योंकि वही लोग औषधि जानते व दूसरों को औषधियें देकर आराम करते हैं ॥

नम्बर ५—में सरावगी, वैष्णव, शैव यह होंगे । क्योंकि इन लोगों के बराबर हिंसाकारक मांस और मंदिरा आदि भादक द्रव्यों से ज्यादा परहेज दूसरों को नहीं होता ॥

नम्बर ६ में तो सम्पूर्ण संसार ही पितर होगा क्योंकि घी दूध सब ही खाते हैं । बल्कि भंगी चमार आदि और पशु भी दूध पीते हैं । इसलिये घी और दूध खाने पीने वाले सब ही इन समाजियोंके “आज्यपा” नाम वाले पितर होंगे ॥

नम्बर ७ के पितरों में सिर्फ अमीर लोग ही होंगे । क्योंकि उन्हींका सुखरूप अच्छा समय जाता है

और नम्बर ८ में तो सिवाय राजाके कोई हो ही नहीं सकता ? क्योंकि दुष्टों को दरड देनेवाला

\* इन व्यभिचार प्रचारक निन्दित पुस्तकोंका मुखतोड़ जवाय और सद्युक्तियुक्त स्पष्ट हन श्री सनातनधर्मरक्षक विद्यावाचस्पति विद्वान् प० भीमसेन शर्मादि महोपदेशकों के रचित “विधवायिवाहभीमांसा” और “पञ्चकन्याधरित्रादि” पुस्तकोंमें देखो ॥

न्यायकारी राजा ही हो उकता है । अब कहिये कि स्वामी जी के लेखानुसार तो संसारभर चाहे कोई जाति हो आप का पितर मर्यादित् पिता हुआ और पुत्र का नाम ही न रहा क्या यह बात यथार्थ है ? और इसको आप मानते हैं कि नहीं । अगर मानते हैं तो वह खबरदार हो जाइये ? व आजसे रिश्तेका नाम मिटा दीजिये क्योंकि जाहिरा देखनेमें अगर्च वह आपका भाई या भतीजा या लड़का है या कोई दूसरी कम कौम है परन्तु उस ने भी दूध पिया है व अभीतक दूध पीता होगा आजसे उस को पिता ही कहिये और फिर अगर आप के समाजियोंमें से किसी को कोई जाति जंच नीच भली दुरी गाली दे या मारवैठे तो इस का बुरा न मानिये क्योंकि वह भी शायद स्वामी जीके लेखानुसार किसी किस्मके पितरोंमें से आपका पितर जरूर ही होगा और कदाचित् अगर और किसी नम्बर में न भी आया तो दूध पीने वाले पितरोंमें तो अवश्य ही आवेगा सिवाय इसके अब किसी आदमीकी तावेदारीमें विलिक जूतातक उठानेमें आपको परहेज न करना चाहिये क्योंकि संसार में पितृसेवा ही मुख्य \* धर्म है

+ वाह ! स्वामीजीने क्या ही अच्छा ( जीवित पितरोंका ) आहु तर्पण कराया । अन्य भाग्य हैं उन आधुनिक आर्थिकोंकि जो सम्पूर्ण संसारभर के नमुण्योंको अ-

अगर आप इतने पर कहें कि पितृशब्दसे पिता का अर्थ नहीं है तो आप ही कहिये क्या होगा ? जरा स्वामी जीका लेख सत्यार्थप्रकाश पृ० ८८ पंक्ति २३ वा उन्हींका यजुर्वेदभाष्य अध्याय १८ को देखलेंजिये॥

मध्य १४—स० प्र० पृ० १०० में “धन्वन्तरये स्वाहा । सहद्यावापूर्यिवीभ्यां स्वाहा । उ० सानुगायेन्द्राय नमः । ओ३३—सानुगाय यमाय नमः । ओ३३—वनस्पतिभ्यो नमः । श्रियै नमः । भद्रकाल्यै नमः । इत्यादि लिखकर कहा है कि रेती वा पूर्यिवी ही पर पञ्च विद्वाकर उन पर पूर्वदिशादिके क्रमानुसार उपरोक्त मंत्र पढ़कर अन्नके भाग यानी ग्रास रखें, पीछे जो कोई अतिथि हो उस को खिला देवे और नमक मिलाएं हुआ अन्न अर्थात् दाल भात रोटी शाक बगैरह उठाकर ( ६ ) छै भाग पूर्यिवीमें धरे ॥ इति ॥

हे प्रिय महाशयो ? अब जिद्द और पक्षपात के पर्दे नेत्रों से हटाओ और आपने उपदेशकों से पूछो कि स्वा० द० जीने इन उपरोक्त मन्त्रोंका गर्व स्पष्टया क्यों नहीं लिखा ? क्या इस मे कोई भेद है क्योंकि और जगह तो स्वामी जी ने सक शब्द भी

पना पिता माता समझकर उनका अत्यन्त प्रेम व श्रद्धासे श्राद्ध तर्पण करते हैं । परन्तु न मालूम कि यह समाजी अपनी खियोको ( स्वा० द० रचित नम्बर ६ के “श्राद्धपा” नाम वाले पितरोंमें समझते व मानते हुए भी ) क्या मानेंगे या कहेंगे अर्थात् दूध धी खाने के कारण अवश्य ही उन अपनी खियोको विश्व-सूक्ष्मा में निर्भेंगे ॥

व्यर्थ नहीं छोड़ा है फिर यहां अर्थों का क्यों भोजन करगये ? क्यों साहब ! इन भागोंसे क्या प्रयोजन है ? आप तो विद्वानोंका नाम देवता कहते हैं फिर यह भाग किसके ? क्य / वनस्पति और लदमो रोटी खातीं है या पृथिवी खाने आती है ? ईश्वर मूर्त्तिके सामने तो भोग रखनेमें आप को बड़ा रुक्ष होता है और आप पृथिवी जड़ पदार्थको भोग रखते हैं यह क्या बात है और फिर अनुचरों ( लप्रकर व सेना ) सहित दल्ल, वंकण, यम इत्यादिके नामोंसे रखना और उन को भाग देना यह तो आप सनातन कथा ले पैठे, अगर पुरानो नहीं हैं तो कहिये यम का नाम यहां भी हाकिम ही का होगा या नहीं ? और जब शायद वह अनुचरों के सहित आजावेंगे तब कहिये गरीबका क्या हाल होगा उसका तो एक हो दिन में दिवाला निकलता है फिर ये रोज २ का नियम कहांतर्ल्ल चलेगा ॥

ग्र १५—आप तो विद्वानों को ही देवता कहते हैं फिर कहिये यह भद्रकाली, वनस्पति, जले मह इत्यादि भी कोई विद्वान् घर २ फिरने वाले हैं जिन्हें पृथक् २ भग्न देनेको बतलाया है, और जब विद्वान् ही देवता हैं तो यह पन्द्रह सोलह नाम अलहदा अलहदा क्यों; क्या उन विद्वानोंके नामके साथ यह भद्रकाली वनस्पति इत्यादिका विशेषण रहता है सिवाय इसके इन पन्द्रह सोलह विद्वानोंको रोज रोज कहांतक कोई खिलावेगा इस पर अगर आप

कहें कि एक २ ग्रास निकालें तो कहिये कि क्या वे एक ग्रास से सन्तुष्ट हो सकते हैं कभी नहीं ! अगर आप कहें कि ये ईश्वर के नाम हैं तो हम कहते हैं कि ईश्वर एक है एक ही भाग निकालना योग्य है और अगर आप कहें कि उनके अनन्त नाम हैं तो नामानुसार भाग भी अनन्त होना चाहिये फिर ये पंद्रह चौलह ही क्यों ? और आपका ईश्वर निराकार है फिर निराकार ईश्वर कैसे इन साकार पदार्थों को खावेगा क्या निराकार ईश्वर को पाञ्च भौतिक प्राणीवी तरह भूख लगती है ? यदि नहीं कहो तो फिर ये आपके दिये सब भाग व्यर्थ हैं ? आगर्च हाँ कहो कि ईश्वर हमारे इस भक्ति को व्यापक रूप से देखकर प्रसन्न होता है तो अब आप ही फैसला करो कि हम सनातनी और आप समाजिचर्योंमें पक्के ( कट्ठर ) मूर्त्तिपूजक कौन हुए ?

प्रश्न १६—(आम्राश्चसित्ताः पितरश्चप्रोणिना एका क्रिया द्वयर्थकरी प्रसिद्धा ) व्याकरण महाभाष्य के इस प्रमाण से भी मृत पितरोंका तर्पण करना सिद्ध है । तब ऐसे प्रमाण वेदोक्त होने पर भी भरों के आद्व तर्पण मानने में तुम् क्यों हिचकिचाते हो । क्या हमने मृत पुरुषों के आद्व तर्पण की सिद्धि में वेदादि के जो अनेक प्रमाण दिये हैं उनके सिये तुम्हारा कोई उपदेशक या परिणत हाय में वेद पुस्तक लेके शपथ कर कह सकेगा कि मृत आद्वके सिये ये सत्य २ प्रमाण नहीं हैं ॥

प्रश्न १७—( तृनीयाह प्रद्यौरिति यस्या पितर  
ज्ञासते अथवं० १८ । २ । ४८ ) यहाँ से ऊपर प्रद्यौ  
नामक तीसरा लोक है जिस में पितर लोग रहते  
हैं । सो क्या तुम्हारे जीवित पितर कहीं आकाश  
में लटका करते हैं । और मंचमें कहे वे ही पितर हैं  
जिन के लिये आद्व तर्पण किया जाता है । तब यदा  
इससे जीवितों के आद्व माननेका खण्डन नहीं होता ॥

प्रश्न १८—सिद्धान्त शिरोमणि पुस्तक को स्वा०  
द० ने प्रामाणिक माना है उसमें लिखा है कि (ततः  
शेषाणि कन्याया यान्यहानितुयोडश । क्रतुपिस्ता-  
नितुल्यानि पितृभ्योदत्तमक्षयम् ॥ ) क्या यह कन्या  
के सूर्य में होने वाले कनागत आद्वों के लिये आ-  
र्थ प्रमाण नहीं है ? ।

प्रश्न १९—क्या तुम लोगों ने यह मिथ्या कुतर्क-  
नहीं किया है कि राजा कर्ण से चलने के कारण  
कणागत कहाये फिर कनागत अपभ्रंश हो गया ।  
इस से कर्ण राजा के पहिले कनागत आद्व नहीं  
थे । क्योंकि जब सिद्धान्त शिरोमणि के प्रमाणा-  
नुसार कन्यागत शब्द से कनागत हुआ कनागत  
आद्व सनातन अनादि काल से सिद्ध होने पर तु-  
म्हारा कुतर्क मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं हो गया ।  
क्या अपनी ऐसी २ ऐसी २ निध्या कल्पनाओं का  
निर्मूल खण्डन हो जाने पर अब भी लज्जित  
नहीं होगे ? ॥

प्रश्न २०—(आद्वे शरदः । पा० ४। ३। १२ ॥ श-  
रदि भवं शारदिकं आद्वम् ) पाणिनि आचार्य के  
व्याकरण का यह सूच है । शर्य यह है कि शरद्  
कृतु नाम कार्तिक में होने वाले आद्व शारदिक  
कहते हैं । यहां सन्य कृतुओं के आद्वों का विचार  
छोड़ के शरदकृतु के खास आद्वों का प्रमाण होने  
से क्या इन कनागतों का अचार पाणिनि आचार्य से  
भी पहले सति प्राचीन काल से चला सिद्ध नहीं है ॥

प्रश्न २१—यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के  
दिये आद्व का फल पिता को नहीं पहुंच सकतातो—  
मृतानामिहजन्तूनां, आदुचेत्तृप्तिकारणम् ।  
जोवतामिहजन्तूनां, वृथापाथेयकल्पनम् ॥

मरे हुए प्राणियों को यदि आद्व का फल मिल  
सकता है तब जीवित भनुष्य जब मुसाफिरीमें जावे  
तब घर के भनुष्य आद्व द्वारा उसकी तृप्ति मार्गमें  
क्यों नहीं कर सकते । इस नास्तिक चार्वाकके और  
तुम्हारे मत में क्या भेद है ? यदि कुछ भेद नहीं तो  
तुम भी नास्तिक सिद्ध क्यों नहीं हुए ?

प्रश्न २२—तुम कहते हो कि मरे हुए पितादिको  
जन्मान्तर में आद्व तर्पण का फल मिलने का कोई  
प्रत्यक्ष प्रमाण वा उनके हाथकी रसीद नहीं आती  
तो फल पहुंचता है यह कैसे मान लेवें । तब तुमसे  
पूछा जाता है कि अपने किये शुभाशुभ कर्मों का  
फल जन्मान्तर में अपने को मिल जाता है इस में

क्या प्रमाण है ! क्या इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण वा रसीद दिखा सकते हो ? जब नहीं दिखा सकते तो यहाँ भी चार्वाक नास्तिक का भत ( शृण्कृत्वा घृतं पि-वेत् ) क्यों नहीं मान लेते हो ? ॥

प्रश्न २३—तुम कहते हो कि मरजाने पर अन्य के किये कर्म का फल अन्य को नहीं पहुँच सकता तो यदि एक राजा रईस दशलाख रुपयों का किसी खास के नाम वा उभा के नाम वसीयत नामा कर जावे कि इस धन से अनाथालय, सदावक्त वा पाठशाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जाया करें, और वे काम ठीक २ छैये ही हों तो क्या उन कामों से होने वाले उपकारों का फल उस धन दाता को जन्मान्तर में नहीं मिलेगा ? यदि कर्त्ता-ओंको मिलना कहो तो उन का कमाया धन नहीं है और जिसने वसीयत नामा किया उसको फल न मिले तो क्या ऐसा पुण्य का काम निष्फल होगा ? फल पहुँचना मानना पड़ा तो उसी कायदे से आद्वादि धर्म करनेके लिये पिता अपने पुत्रको धनादि सर्वस्य सौंपता है तब पुत्र कृत आद्वादि का फल पिता को क्यों नहीं मिलेगा ? ॥

प्रश्न २४—जब कि ( आत्मावै पुत्रनामाचि ) ( आत्मावैजायते पुत्रः ) इत्यादि श्रुति और ( ग-भर्त्मभूत्वैहजायते ) ( भार्यापुत्रःस्वकातनूः ) इत्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद वा एकता दिखाई है तब तुम फूट रूप भेद वा अन्य २ होने का भगड़ा क्यों लगाते हो ?

प्रश्न २०—(आद्वे शरदः । पा० ४ । ३ । १२ ॥ श-  
रदि भवं शारदिकं आद्वम् ) पाणिनि आचार्य के  
व्याकरण का यह सूच है । शर्य यह है कि शरद  
ज्ञातु नाम कार्तिक में होने वाले आद्व शारदिक  
कहते हैं । यहां अन्य ज्ञातुओं के आद्वों का विचार  
छोड़ के शरदज्ञातु के खास आद्वों का प्रमाण होने  
से क्या इन कनागतों का प्रचार पाणिनि आचार्य से  
भी पहले अति प्राचीन काल से चला सिद्ध नहीं है॥

प्रश्न २१—यदि तुम्हारा यह मत है कि पुच्छ के  
दिये आद्व का फल पिता को नहीं पहुंच सकतातो-  
मृतानामिहजन्तूनां, आद्वचेत्तु प्रिकारणम् ।  
जोवतामिहजन्तूनां, वृथापाथेयकल्पनम् ॥

मरे हुए प्राणियों को यदि आद्व का फल मिल  
सकता है तब जीवित भनुष्य जब मुसाफिरी में जावे  
तब भर के भनुष्य आद्व द्वारा उसकी तृप्ति मार्ग में  
क्यों नहीं कर सकते । इस नास्तिक चार्वाकी के और  
तुम्हारे मत में क्या भेद है ? यदि कुछ भेद नहीं  
तुम भी नास्तिक सिद्ध क्यों नहीं हुए ?

प्रश्न २२—तुम कहते हो कि मरे हुए वि-  
जन्मान्तर में आद्व तर्पण का फल मिल-  
प्रत्यक्ष प्रमाण वा उनके हाथ की रसी  
तो फल पहुंचता है यह कैसे मान  
पूछा जाता है कि श्रापने किये  
फल जन्मान्तर से श्रापने को

क्या प्रमाण है । क्या इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण वा रसीद दिखा सकते हो ? जब नहीं दिखा सकते तो यहाँ भी चार्वाक नास्तिक का मत ( चरणकृत्वा घृतं पि-वेत् ) क्यों नहीं भान लेते हो ? ॥

प्रश्न २३—तुम कहते हो कि सरजाने पर अन्य के किये कर्म का फल अन्य को नहीं पहुंच सकता तो यदि कोई राजा र्द्विस दशलाख रुपयों का कि-सी खास के नाम वा सभा के नाम वसीयत नामा कर जावे कि इस धन से अनाथालय, बदावत् वा पाठशाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जाया करें, और वे काम ठीक २ बैसे ही हों तो क्या उन कार्मों से होने वाले उपकारों का फल उस धन दाता को जन्मान्तर में नहीं मिलेगा ? यदि कर्त्ता-ओंको मिलना कहो तो उन का कमाया धन नहीं है और जिसने वसीयत नामा किया उसको फल न मिले तो क्या ऐसा पुण्य का काम निष्फल होगा ? फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कायदे से आद्वादि धर्म करनेके लिये पिता,अपने पुत्रको धनादि सर्वस्व सौंपता है तब पुत्र कृत आद्वादि का फल पिता को क्यों नहीं मिलेगा ? ॥

प्रश्न २४—जब कि ( आत्मावै पुत्रनामासि ) ( आत्मावैजायते पुत्रः ) इत्यादि श्रुति और ( ग-भीमत्वैहजायते ) ( भार्यापुत्रःस्वकातनूः ) इत्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद वा सकता दिखाई है तब तुम कूट रूप भेद वा अन्य २ होने का भागड़ा क्यों लगाते हो ?

प्रश्न २५—क्या तुम पिता का अंश पुत्र को नहीं  
मानते हो । जब शघ्यवरूप है तो हाथ मिहनत के-  
रके रोटी बनाता, मुख चवाने महीन करने में अभी-  
करता है पर हाथ कुद्द भी नहीं खाता मुखको स्वाद-  
आता और पेट कुद्द भी मिहनत नहीं करता परन्तु  
भूँख निवृत्तिरूप मुख्य फल पेटको ही होता है तब  
अन्य हाथके किये कर्मका फल पेटको क्यों पहुंचता  
है । क्या इन हाथ मुख पेटमें भी लड़ाई कराओगे  
वा क्या यहां भी खण्डन करोगे ? ॥

प्रश्न २६—सामवेद भाष्यकार स्वाठ तुलसीरामजी  
ने अपने भास्करप्रकाशके द्वसी आद्वप्रकरणमें बहुतेरे  
मन्त्रोंके अर्थमें यह लिखा है कि यह हवन हमारे मृत  
पूर्वजोंके लिये फलदायक हो, अब आप ही बतलाए-  
द्ये कि आपके मृत पूर्वज क्या इस आपके हवनकी  
गन्ध लेनेको जीते वैठे हैं ? और यदि नहीं वैठे हैं  
और उनका उनके कर्मनुसार किसी योनिमें जन्म हो  
चुका है तो फिर यह हवन आपका उनके वास्ते कैसे  
फल दायक हो सकता है ? और यदि आप का हवन  
उन को फलदायक हो सकता है तो फिर बतलाए-  
कि हमारा पिण्डदान बगैरह क्यों हमारे मृत पूर्वजों  
को फलदायक न होगा ? अब यदि फिर आप कहें  
कि हमारे स्वाठ तुलसीरामजीका ऐसा सिद्धान्त नहीं  
है तो फिर विशेष बतलाने व दिखाने की क्या  
आवश्यकता है ? केयल भा० प्र० पृ० १३८ में अयं  
१८ । २ । ४८ का ही उसका किया हुआ अर्थ देख-  
कर यदि यथार्थ है तो कुछ लज्जित हो जाइयेगा ॥

प्रश्न २७—यदि फिर आप कहें कि हवन की सुध वायुद्वारा उनको पहुंच सकती है—तो मैं फिर ताहूं कि क्या हमारे पिण्डदानकी और उस भोकी सुगन्धि (जो ब्राह्मणों के लिये बनाया गया उसी वायुद्वारा हमारे पितरोंको न पहुंचेगी ?

प्र० २८—यदि तुम नास्तिकोंके सामने प्रत्यक्षादिशद्वादिको सिद्ध न कर सकने के कारण वेदोक्त द्रादिके खण्डनका पाप अपने शिरलादते हो तो । उसी कायदेसे तुम्हारे अन्य मन्त्रादिका डन नहीं हो सकता ? ॥

प्रश्न २९—यदि तुम्हारा दावा हो तो अभ्युपग-  
ंधान्त को लेकर हम सनातनी तुम्हारे वेदादि  
तत्त्वका खण्डन करनेका नोटिस तुम्हको देते हैं ।  
क्या तुम अपने सन्तात्यका मण्डन करनेकी शक्ति  
ते हो ॥ १ ॥

प्रश्न ३०—जब स्वामी शंकराचार्यजी तथा कुमा-  
ल भट्टादि बड़े २ नामी विद्वानों ने नास्तिकों के  
य बड़े २ प्रवल शास्त्रार्थ करते हुए भी श्राद्धादि  
कर्मोंका त्याग वा खण्डन न किया तो नास्तिकों  
भयसे अपने वेदोक्त धर्मका त्याग करना क्या यह  
हारी निर्बलता नहीं है ? ॥ इत्यलम् ॥

इति श्रीश्राद्धपितृमीमांसायां प्रिय समाजो  
महाश्चयेभ्यः श्राद्धविंपयक ३० त्रिंश-

त्प्रश्नान्तरमुत्तरप्राप्त्यर्थं समा-  
स्यायं सप्तमोऽध्यायः ॥

# नवीन पुस्तकों की सूचना ।

१—श्राद्धपितृमीमांसा—यह पुस्तक देवनागरी अक्षर और हिन्दीभाषामें लिपा है। इसमें वर्तमान आर्यसमाजियों के जितने ( श्राद्ध व पितृपञ्च ) कर्म में सन्देह अथवा आज्ञेप होते हैं उन सबोंका प्रश्नोत्तररूपमें अत्यन्त प्रबल प्रमाण तथा सद्युक्तियोंसे ऐसा निवारण किया गया है कि किनको एक-बार भी आदिसे अन्त सक पढ़नेसे थोड़ी बुद्धि बाला भी आस्तिक ज्ञान ठीक समझ सकता है कि ( श्राद्ध व पितृपञ्च किसे कर्मका नाम है, इसका रहस्य क्या है और वेदादि सच्छाखोंमें यह कर्म किनका अर्थात् जीवितोंका वा मृतपितरोंका दर्जित है ? ) पुस्तककी साइज १८×२२ है ॥

[ वेदसंज्ञाविचार ]—इस पुस्तकमें वेदादि ग्रन्थ और निरुक्तादिसे ब्राह्मणग्रन्थों का वेदत्व सिद्ध किया है। तथा आर्यसमाजियोंके इसके विपक्षमें दिये प्रमाणों का खण्डन है ( मूँ )॥ पुस्तक नागरी भाषामें है ॥

( ३ )—[ आधुनिक महर्षिकी पोल ]—यह ट्रैक्ट श्री १००८ परमपूज्य जगतगुरु श्रीद्वारकाशारदापीठाचोश स्वामी शङ्कुराघार्यजीके सम्मति पत्र समेत देवनागरी अक्षर हिन्दीभाषामें लिपाया गया है। इन में स्वाठ दयानन्दसरस्वती ( वर्तमान आर्यसमन्योंके ऋषि गुहजीका संस्कृत व्याकरण में सत्यवक्त्रतामें ( अर्थात् उनके सत्यवादी होनेमें ) तथा उनके स्वरचित् ग्रन्थोंके पूर्वापरविरोध होनेमें सूध ही पोल खोली व दिखायी गई है कि वह स्वामीजी व्याकरणमें कैसे विद्वान् थे ? ) मृत्यु ॥ हाताहृष्टं अस्य ॥

गिलनेका पता—सेक्टरी सनातनघर मैदानान्तर्गत गीता-पाठशाला मुख्य याजार कराघी सिन्ध सथा  
वैद्यराज सेठ मूलचन्द्र ( साध ) श्रीगिरिधारीजीके  
मन्दिरके पास ठट्ठा—सिन्ध

ॐ  
श्रीहरि: ॥

# श्राद्धपितृमीमांसा

## जिसको

“वेदसंज्ञाविचार” और “आधु-  
निक महर्षि की पील” नामक  
पुस्तकों के रचयिता

( सिन्ध ) करांची सनातनधर्म  
मण्डलके संरक्षक पण्डित  
गीकुल चन्द्र शर्मा ने  
निर्माण किया

Printed by B D.S. at the Brahma  
Press Itawali city

प्रथमवार } वि० संवत् १९६८ { मू० ॥)  
१००० } ई० सन् १९९२ { ढा० ५०

॥ श्रीहरिः ॥

# श्राद्धपितृमीमांसा

जिसको

(सिंधु) ठहा देशीय विद्वद्वर पण्डित श्रीवीरभानु शम्मतिमज, करांची „सनातन धर्म“ मरडलके,, संरक्षक पं० गोकुल चन्द्र शर्मा ने

श्रुति ( वेद ), स्मृति-घौतमून्-पुराण आदि धर्म शास्त्र एवं श्रीरामायण-महाभारतादि धर्म इतिहासों के प्रबल प्रभाग और सद्युक्तियोंसे असंलग्न करके सर्व आस्तिकगणों के विविध संदेह निवारणार्थे रचा ॥

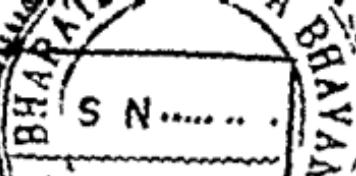
अौर

श्रीमान् ज्ञानिय कुलदिवाकर सनातन धर्म प्रचारोत्तराही (लुहाणा वेश तिलक) ठहा देशीय एक उदारचित्तव्यक्ति ने सर्व वेदमतानुयायियों के उपकारार्थ छपाकर प्रसिद्ध किया ॥

प्रथमवार } विक्रम सं० १९६६ { टपालखर्च  
१००० } ई० सन् १९९२ { श्रीलग.

# ॥ विषयसूची ॥

विःसं०	विषय	पृष्ठसे	पृष्ठतक
१	भूमिका ।	१	३
२	सन्मानपत्रम् ।	३	५
३	प्रार्थना	९	८
॥ प्रथम अध्याय में ॥			
४	“आदु” क्या है? अर्थात् किसकर्म का नान है	८	११
५	आदु शब्द का शास्त्रोक्त अर्थ ।	१२	१५
६	आदु कर्म का रहस्य (फल) ।	१६	१८
॥ द्वितीय अध्याय में ॥			
७	‘आदु, सृतपितरों का ही होता है कि जीवित भाता पितादि का ? ।	१९	३४
॥ तृतीय अध्यायों में ॥			
८	भरणानन्तर पितादिकों के साय उन के पुत्रादिकों का विशेष संबंध ।	३४	४२
॥ चतुर्थ अध्याय में ॥			
९	कर्मानुसार उच्च नीच योनि में प्राप्त उन हमारे सृत पितादिकों आदु कर्म में दिया हुवा पिण्ड भोजनादि कैसे पहुंच जाते हैं? अयवा उन को आदु भोजन पहुंचाने वाले वे कौन हैं? कि जिन्होंमें इतनी श्रलौकिक सामर्थ्य है ।	४३	४९
१०	श्रीर „क्या, ये हमारे सृत पितर हमारे किये हुए आदु (पितृयज्ञ) में भी कभी आते हैं कि नहीं,, ? इस भाव वा संदेह से उठने वाले मग्न का भी अत्युत्तम समाधान	४९	५८



- १ हमारे वितरों के प्रति पिरड भोजनादि  
पहुंचजाने की विश्वासदायक वेदोक्त, रसीद, R.R.C.  
२ मृत माणी शपने किये पाप पुण्य कर्मोंके  
अनुसार यदि वह पशु, पक्षी, यक्ष, रा-  
घस अथवा गंधर्व-देवता होजाय तो किर  
आहु कर्म में हमारा दिया हुआ क्षीर-  
धी-हलुआ-लहू-पकवान कचौरी वगीरः  
पदार्थ उनको कैसे देहानुकूल रूचिकर(प्रिय) होंगे ? ५९ ६२

## ॥ पंचम अध्याय में ॥

- ३ विद्व लोक इस मनुष्य लोक से भिन्न कोई  
अन्य लोक है क्या ? और वह कहाँ है ? ६३ ६५  
४ विद्वलोक निवासी वितरों का शरीर  
कैसा होता है ? और वे हमारे देखने  
में कभी आते हैं कि नहीं ? ६५ ६६  
५ चन विद्व देवोंका राजा ( स्वामी अधि-  
प्राता ) कौन है ? ६६ ६२  
६ विद्वलोक निवासी वितरोंके पूजन सत्का-  
र ( आहु तर्पण ) करने की क्या आव-  
श्यकता है ? और न करने से क्या हानि  
वा दोष है ? ६७ ६२

## ॥ पठु अध्याय में ॥

- ७ आहु कर्म में ( भूदेव ) ब्राह्मणों की क्या  
आवश्यकता है ? और क्या ब्राह्मणों को  
इसके लिये किसी राजा से कोई सार्वानि-  
केट रूप इकरार नामा भी लिखा हुआ  
मिला है ? ८१ ८५

- १८ आहु कर्म में योग्य ( अधिकारी ) और  
आयोग्य ( अनधिकारी ) व्रात्मणों का  
निर्णय और आहु भोक्ता तथा कर्तां को  
आहु दिन मे जवश्य शास्त्रोक्त नियम  
से रहने की विधि ॥ ८५ ८१
- १९ कलियुगमें समयानुकूल आहुदि कर्मकेयोग्य  
सुपात्र व्रात्मणों का अत्युत्तम निर्णय । ८६ ८७
- २० समयानुकूल सुपान व्रात्मण के न मि-  
लने मे, आपत्ति कारा में तथा तमाम  
दरिद्रता यानी कगालपने की हालत  
मे भी गौण आहु करने की अत्यन्त आ-  
वश्यकता और और सुगम विधि । ८८ १०१
- ॥ सप्तम अध्याय में ॥
- २१ प्रिय आर्य समाजी महाशयो से आहु  
विषयक ३७ तीस प्रश्नो का सम्भवता  
पूर्वक समझाण युक्तियुक्त शीघ्र २ उत्तर  
मिलने के लिये प्रार्थना । १०२ ११९

## नम्रतया सूचना !!

मेरे प्रिय सम्यगणों को नम्रता से सूचित किया जाता  
है कि नेरी चन्न मूलिसिन्धु देश होने के कारण मेरा हिंदी  
भाषा लिखने का ऐसा सरल सम्भास नहीं है इस लिये क-  
दाचित् कहीं हिन्दी लिखने में अक्षर-ग्रन्थ-वा भाषा शैली  
की गलती मालूम हो जाय तो कृपा करके ज़मा करें और  
हस वृत्तिसे इस पुस्तक मे से तत्त्व रूप दूध का ही ग्रहण करें  
भवदीय कृपाभिलापी—गोकुलचन्द्र ॥

•यह पुस्तक सनात्न धर्मसंगठन करांची की सहायताथे—)।  
पांच ऐसा धर्मार्थ लेकर विना मूल्य दिया जाता है ॥



तटपुक्षपाय विद्महे वक्तुण्डाय धीमहि, सप्तो दत्तिः  
मधोदयात् ॥ कृ० यजु० श्चारण्यक प्र० १० अनु० ५ ॥

श्रीगणेशायगमः । श्रीविघ्नेशरायगमः ॥ श्रीविघ्नगणायगमः ॥॥

## ॥ भूमिका ॥

मिय पाठेक बृन्द ! ध्यान में रहे कि इस ह-  
मारे सनातनधर्म के विरोधी वितण्डावादी दुरा-  
ग्रही अशास्त्रोय सम्प्रदाय के जन पूर्वकाल से चले  
आते हैं और अपनी माया रूपी बंचना शक्ति से  
उक्त धर्म के प्रबोधों को असत्य मानकर अनेक प्र-  
कार के उपद्रवों से आक्रान्त [ पीड़ित ] करते र-  
हते हैं परन्तु उन पक्षपातियों के विचारों से यह  
सनातन धर्म अद्यावधि अनवच्छिन्न अशिदगम सु-  
वर्ण की न्यांदृ' अपनी कीर्ति रूप निर्मल कान्ति  
से प्रकाशवान् ही रहा, प्रत्युत वेही द्वैषी निर्मल हुए ।  
और सभी २ के अनुसार अनेक मत तथा पंथ जो  
श्रुति स्मृति विद्वद् प्रसरित हुये वे भी घोर रजनी  
में खद्योत ( युद्ध खुबीरे ) के तुल्य अपना चम-  
त्कार चमकाय क्षणिक अंधकारके साथ ही लय हो

गये । अब इस वर्तमान काल में शाधुनिक नवशिक्षित युवक जन समाजी भाई जिन्हों की बुद्धि में विपरीत भाव का आवेश हो रहा है वे सनातनधर्म निरंध ग्रंथ पृत्य रीतियों को केवल कल्पित मान कर घासनी प्रभत्त उक्ति युक्ति कपोल कल्पना को सत्य मान रहे हैं, और शास्त्र विरोधी जनों के मिथ्या प्रलाप कूट निरंधों को नार्यक मानकर प्रत्यय कर रहे हैं, प्रत्युत उन्हीं अघटित घटना प्रपञ्च निरंधों को बार २ मुद्रायन्त्रों हारा प्रवर्तन कर रहे हैं तथा यज्ञ २ विद्वंद्विरिएं ने दृश दिया वा निरुत्तर किया उन पंक्तियों को छोड़कर स्वकल्पित उक्ति युक्ति स्वापित कर रहे हैं । महा शोक है ? कि इसी सनातन धर्मविलम्बियों के बंश में उत्पन्न होकर प्रथम अपने ही सनातन धर्म रूपी वन को धृष्यर्थ वितंडा वाङ्जाल कुठार से छेदन कर रहे हैं ? और पूर्व ग्रंथ कर्ता शृणिगण तथा निज पूर्वज आचार्यों को अल्पज्ञ मानकर अपने ही विशिष्ट वृद्धों का उपहास कर रहे हैं । यद्यपि अनेक बार प्रत्येक सनातनधर्म सभाओं से ये वितंडावादी निरुत्तर हो चुके हैं तथा पि—“जानत हैं बूझत नहीं सानत ऐसी जिन्द । तुलसी इस रंसारको हुआ मोतिया विंद” इत्यादि केवल हठ माच स्थित होकर अनभिज्ञ साधारण जन उमूह को उन्मार्ग से चुत करने की काशिश कर रहे हैं यो अब इन्होंके अस्थिर कुर्तार्क

रूप वार्जाल को श्रुति स्मृति आदि धर्म शास्त्रोंके प्रवल प्रभाण और अकांठ्य युक्ति युक्त इस “आङ्गुष्ठ-पितृमीमांसा” नाम पुस्तक रूप वज्र से निर्मल छेदन करने के लिये श्रीनान् श्वर्चित कुल भूषण उद्धर्म प्रचारोत्साही उदार चित्त सेठ जी प्रते निज प्रेम पूरित प्रबंध करने में कोटिशः धन्यवाद देकर १ \* गुप्त नाम में उन्मान पत्र अर्पण किया जाता है ॥

### सत्सानपत्रम् ॥

सद्गुर्मार्गं परिपीपत्रिधावतन्द्रः ।

ठट्टा ब्रजाऽधिष्ठित कश्चित् क्षत्रिवीरः ॥

सत् आदुं मण्डन मकार यदाक्षयादः ।

सच्छास्त्रसिद्धनयसंहृतसर्ववादः ॥१॥

अथात्—श्रेष्ठ धर्म मार्ग के पालन विधियों आलस्य रहित “ठट्टा” नाम ब्रजके अधिष्ठित शत्रिकुल में वीर किसी एक पुरुष ने पूर्ण प्रेम से, सम्पूर्ण कुतकों के निवारण करने वाले श्रेष्ठ शास्त्रों से सिद्ध किये गये युक्तियुक्त इस “आङ्गुष्ठ-पितृ-मीमांसा” नाम पुस्तक के रचनार्थ (सर्वोपिकार होने में) आज्ञा की ॥१॥ सो—

१ \* जिस श्वर्चित वीर चेठ जी ने ऐसे परमार्थ रूप उत्सम दान में अपना नाम प्रसिद्ध ( प्रगट ) न कराने में पूर्ण उदारता दिखलाई है अर्थात् “गुप्तदान नष्टपुरुष” का ही अनुष्ठरण किया है । इस लिये चेठ जी के कहे अनुभार नाम प्रगट नहीं किया गया है ॥

दुस्तकर्मानव पराकृतशास्त्रसिद्धाद्वयोग सम  
नुष्टितसिद्धिसाधुम्। संदर्भमेतदविलंरचयामिनून्  
ठठान्नान्नाधिपतिक्षत्रिवरेण्युक्तः ॥२॥

शास्त्र विशद्ध खोटे तर्क करने वाले मनुष्यों से  
दूर किये गये जो वेदादि श्रेष्ठ शास्त्र सिद्ध “आद्व  
कर्म प्रयोग” उन के अनुष्टान को पुनः सिद्ध  
करने वाले इस संदर्भ अर्थात् व्याख्यान रूप लघु  
ग्रन्थ को ठठा नाम ब्रजके अधिपति श्रेष्ठ क्षत्रिय  
की जाता चे निश्चय पूर्वक रचता हूं \* ॥२॥

सो यह—

“ठठान्नान्नस्थितसुधर्म सभास्थ्यसभ्य-  
विग्रेणवीरभान्नवात्मज तद्विलेखि ॥  
आद्वीयकर्मणि कुतकिंकृतानुयोग—  
स्तस्योत्तरंभवतु आस्तकवर्यतुपृथ्वै” ॥३॥

ठठा नाम ब्रजमें स्थित सनातन धर्म सभाके  
संरक्षक सभ्य श्रीवर पं० वीरभानु शमात्मज ब्रा-  
ह्यण करके लिखा गया ( आद्व कर्ममें कुतकिंलोगों

\* यद्यपि मेरे मिय सिंधी भाताओं को सुगमता से स-  
मझे के कारण यह पुस्तक मैंने सिंधी भाषा में ही रचा था  
जिसकी सूचना मेरे बनाये “आधुनिक महारिंकी पोल” और  
“वेद संज्ञा विचार” इन दोनों टैक्टों के पिछारी में छपाई  
गई थी परन्तु यन्त्रालय वालों से सिंधी भाषा की भाषा जै-  
ली ठीक शुद्ध न आप सकने के कारण पुनः यह हिन्दी में ही  
पोना ठीक समझ कर दिन्ही में छपाया गया है इस लिये  
मेरे सिंधी भाषे सुके जाना करें ॥

से किये गये सिद्ध्या कुतकों का ) सत्य समाधान  
रूप उत्तर आस्तिक जनों के प्रसन्नतार्थ होग ॥ ३ ॥

हे श्रीमान् ! आप सनातनधर्म रक्षक के फर  
कमलों में श्रीनन्दनन्दन के प्रशाद रूप, तथा शाश्वी-  
वदि की कुतुमाञ्जुली रूप यह “आहू पितृ भीमांसा”  
नामक अन्य अर्पित है। जैसा है आप का हैलीजिये ॥  
शान्तिरस्तु ! आरोग्यस्तु !! आयुष्मस्तु !!!

तदीय सार्वदिक शुभचिन्तक गोकुलचन्द्र ।



॥ ४ ॥

सत्यमेव जयतिनाऽनुतम् ॥  
 उच्चिष्ठतजाग्रत् प्राप्यवरान्निवोधत ॥  
 नहि सत्यात्परोधर्मो नाऽनुतात्पातकं परम् ॥

ॐ

“एकं विवेकं नुमः”

॥ प्रार्थना ॥

ओ॒म् नमः श्रीसाम्बसदा शिवाय ॥

ओ॒म् सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै ।  
ते जस्ति नावधी तमस्तु माविद्विपावहै ॥ १ ॥

ॐ श्रुतिनिगरितधर्मार्कः स्मृतिगतधर्मार्णु  
णोदयः शशवत् । पौराणिकधर्मोदिः पाखण्डधत्रा  
न्तनाशनोजयतु ॥ २ ॥

शुक्लां ब्रह्मविद्वारसारपरमामाद्यां जगद्व्या-  
पिनीम् । वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्या-  
डन्धकोरापहाम् ॥ हस्तेस्फाटिकमालिकां विद-  
धतीं पद्मासने संस्थिताम् । वन्देतां परमेश्वरी-  
म्भगवतीं बुहुप्रदांशारदाम् ॥ ३ ॥

दोहा धन यौवन उठ जांयगे, जैसे उड़त कपूर ।

मन मूरय गोविन्द भज वर्षों चाहे जगधूर ॥

सभ्यो ! आज मैं आप महोदयों के सम्मुख शास्त्रोक्त आद्व कर्म पर विचार करने के निमित्त उपस्थित हुआ हूं । आप इस बातको उत्तमता से जानते हो कि मैं न कोई ऐसा व्याख्यान दाता हूं और न महामहोपाध्याय हूं तथान कदापि इस कार्य को पूर्णतया करने में समर्थ हूं, परन्तु आप धर्म वीरों के उत्साह और [ परब्रह्म सच्चिदानन्द कंद श्रीकृष्णचन्द्र जी ] की सहायतासे साधारण आस्तिकं जनों के सदेह निवृत्त्यर्थ धर्मरक्षक कतिपय क्षत्रियवरों की आज्ञाको शिरोधार्य करके, अपना ही कर्तव्य समझ कर प्रश्न-उत्तर रूप में विविध गहन संदेहोंके निर्मल करने वाले इस “आद्व पितृ भीमांसा” नाम ग्रंथ को श्रीसद्गुरु निखिल शास्त्र निष्पात [ श्रीबालराम जी ] ( उदासीन ) एवं विद्यावाच-स्पति विद्वद्वर पं० [ श्री भीमसेन शर्मा जी ] शास्त्री विद्यावारिधि विद्वद्वर परिडित [ श्री ज्वालामुख जी ] मिश्र तथा कूर्मचिल भूषण क्षणिकुल संस्थापक वाग्मिवर पंडित [ श्री दुर्वादित्त पन्त जी ] आदि महामहोपदेशकों की पूर्ण कृपासे एवं उन्होंके युक्ति युक्त चिद्वान्तानुसार अलंकृत करके आप धर्म रक्षकों के कर कमलों मे प्रेम से अर्पण किया जाता है आशा है कि हर्ष पूर्वक इस रत्नको आदि से ज्वन्त तक अवश्य देखकर ( पढ़कर ) सद्धर्म का पूर्ण लाभ लेकर दीन को कृत कृत्य करेंगे ।

प्रार्थी—गोकुलचन्द्र शर्मा ।

॥ ३ ॥

S. N.....

नमोऽन्तर्यामिणे  
अथ श्राद्धपितृमांसा ।

प्रथमोऽध्यायः ।

“धर्मं जिज्ञासुगामानां प्रभागं परमं श्रुतिः” समु० ॥

प्रश्नकर्त्ता समाजी महाशय  
और

उत्तरदाता सनातनी पण्डित

समाजी-श्री पण्डित जी महाराज ! दयापाले  
मेरे इस संदेह का निवारण करो कि “श्राद्ध” क्या  
है ? प्रथात् श्राद्ध किस कर्म का नाम है और इस  
का रहस्य क्या है ?

सनातनी-महाशय जी ! आप यदि सनातन  
एवं वेदोक्त श्राद्ध समझने की सज्जी अभिलाषा क-  
रते हो तो मैं आप को ग्रबल प्रभाग एवं शकाटष्ठ  
युक्तियों से श्रेष्ठ शास्त्रोक्त श्राद्ध का भावार्थ और  
उसका रहस्य भी सुनाना चाहता हूँ । जिसको जु-  
नकर और पूर्णतया समझकर तथा अपने अन्य  
मित्र समाजी भाइयों को भी समझाकर इस श्राद्ध  
कर्म [ पितृयज्ञ ] का शास्त्रानुकूल अद्वा से अनु-  
षान करके सद्गुर्भूमि एवं सौक्ष का पूर्ण २ लाख लेकर  
दुर्लभ इस मनुष्य देह को साफल्य करें, यही मेरी  
दुढ़ शाश्वा है ।

अथैतन्मनुः—( श्राद्धमिति श्राद्धो वाच-  
को यस्य तत्कर्म श्राद्धशब्दम् इति-मदनपादि

जातः । श्राद्धु शब्दं कर्म प्रोवाच प्रजानिःश्रे-  
यसार्थं तत्र पितरो देवता ब्राह्मणस्त्वाहवनीया-  
र्थं मासि मासि कार्यमपरपक्षस्याऽपराह्लः श्रेयान् ॥

इत्यादि श्रापस्तम्बीय मनु सम्मत वचनों से  
मृत पितरों के निमित्त पितृ देवों के पूजनार्थ होम,  
पिरण्डदान आदि ब्राह्मण भोजन रूप जो सत्कर्म,  
यही शास्त्रोक्त श्राद्ध शब्दका मुख्य भावार्थ है ।  
तात्पर्य यह कि प्रजाके कल्याणार्थ वेदार्थ ज्ञाता  
भी महर्षि मनु भाराजने एक से से शुभ कर्मका उ-  
पदेश किया है कि जिसका नाम “श्राद्ध” वा “पि-  
तृयज्ञ” है । सो जैसे देवयज्ञ में इन्द्रादि देवताओं  
का पूजन सत्कार होता है और आहवनीय अग्नि  
उन के तृप्त्यर्थ होम का आधार है-तैसे इस पितृ  
यज्ञ में पितर देवोंका पूजन सत्कार और इन्होंके  
तृप्त्यर्थ होम का आधार अग्नि के जगह ब्राह्मणों  
का मुख है । यह कर्म महीने २ करना चाहिये और  
इस कर्म के अनुष्ठान में कृष्णपक्ष का अपराह्ल (म-  
ध्यान्ह ) काल अत्यन्त श्रेष्ठ है । तथा—“अपर पक्षे  
श्राद्धं कुर्वीत” इति कातीयश्राद्धसूचे । कातीय  
श्राद्ध सूचमें कहा है कि कृष्णपक्ष में श्राद्ध करे । तथा  
शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि जिस दिन न पूर्व  
में और न पश्चिम में चन्द्रमा दीखे उसी दिन पि-  
तरों के निमित्त पिरण्डदान करे । एवं—

“अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यन्ति  
तदहः पिण्डपितृयज्ञं कुरुते” ॥

आपस्तम्बीय श्रौत सूत्र  
तथा कात्यायन श्रौत सूत्र ४ । १ । १—

प्रथम प्रश्न, ल० पटल ७ क० ॥

“अपराह्ने पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्राऽर्दर्शनेऽमा-  
वास्याम्” ।

अर्थात्—दो महरों के बाद जिस दिन चन्द्रमा  
देखने में न आवे, उस अमावास्या में पिण्ड पितृ-  
यज्ञ करे । प्रयोजन यह कि विवाह और यज्ञोप-  
वीतादि के तुल्य एक खात्र कर्म का नाम “आद्वा”  
वा पितृयज्ञ है । इसी आद्वा में जो जो कृत्य जिस  
२ प्रकार करना चाहिये और इस आद्वा के जितने  
अवान्तर भेद हैं वे सब श्रुति स्मृति श्रौत गृह्यसूच  
और इतिहास पुराणादि में अति प्राचीन समय से  
विस्तार पूर्वक लिखे हुए हैं जिन्हों के अनुचार अ-  
नादि काल से पद्धतियां भी चली आती हैं । जिस  
कृत्य में अद्यर्पर्यन्त किसी भी आस्तिक को कदापि  
संदेह नहीं होता कि आद्वा किसको कहते हैं । परन्तु  
शब्द अनुमान ३० वर्षों से किन्हीं आसुरी सम्प्रदायों  
के मनुष्यों ने स्वधर्म भर्त्तान्विज्ञ स्वयं भी धर्म से  
ज्युत और अन्य आस्तिक साधारण जन समूह को  
भी कलिकालके प्रभाव से अधीगति में पहुंचाने के  
लिये ग्रन्थक्षेत्रोंमें धूलफोंकते हुए केवल धींगा धींगी

से यह प्रकट किया है कि जीवित माता पिता की सेवा करने का नाम आद्ध्र है । परन्तु इसके लिये लेख प्रमाण वा प्रबल युक्ति इन्हों के पास कोई नहीं । सो अब यह कहता भी जाता है । सारांश यह है कि जैसे विवाह यज्ञोपवीतादि एक २ विशेष विधिसंहित कर्म के नाम हैं वैसे ही आद्ध्र-भी एक कर्म का नाम है—और जो (अद्ध्रया क्रियते तच्छ्राद्धम्) „अद्ध्रासे किया जाय यह आद्ध्र है” से सा अर्थ करके समाजी लोग आद्ध्र को यौगिक मानते हैं वे लोग यह तो बतावें कि वे अअद्ध्रासे अपने कौन २ काम करते हैं? यदि समाजोत्सव व्याख्यानादि सभी काम अद्ध्रा से करते हैं तो तुम्हारे सभी कामों का नाम आद्ध्र हो गया फिर यह क्यों कहते हो कि „जीवित माता पिता की सेवा का नाम आद्ध्र है” । क्या भव्य भांस खाने पीने वाले आर्थ समाजियों का भांस भव्य खाना पीना आदि काम तुम्हारे मत में आद्ध्र नहीं है ? क्या उन कामों को वे अअद्ध्रा से करते हैं ? तथा यदि कोई आ० समाजी महाशय किसी समय ग्रारब्ध कर्मनुसार रोग ग्रसित हो जाय तो फिर जब वह महाशय अपने रोग के शान्त्यर्थ द्वा औपध ( वा अन्य कोई उपाय करे तो क्या वो अअद्ध्रा से करेगा ? क्या अपने शरीर के आरोग्यतार्थ उपाय करने में उसको अद्ध्रा में न होगा ? अर्थात् वह रोगी समाजी अवश्य ही अद्ध्रा से अपने शरीर

रक्षा के लिये उपाय करेगा-तब तो उस महाशय के अद्वा प्रेम से किये हुये उस उपाय को भी “आद्वा” कहना पड़ेगा । क्योंकि उसने अद्वा में उपाय किया रखा था । समाजी अपने शरीर पोषणार्थ जो भोजन करते हैं-सो वह क्या अद्वा से करते हैं ? तथा निद्रा ( नींद ) करना पायखाने में जाना और शास्त्र नियमानुसार सन्तान उत्पत्ति के लिये स्व-स्त्रीसे संभोग करना इत्यादि सब कुछ वे अद्वा और पूर्ण चाहना से करते हैं-तो फिर इन उपरोक्त शब्द कर्मों का नाम आद्वा हुआ ! फिर “अद्वया क्रियते तच्छ्राहम्” इस पंक्तिका अक्षरार्थ करके सरल सनातनी मनुष्यों को क्यों नाहक भ्रमाते हो और “जीवित माता पिता की सेवा” यह अर्थ उपरोक्त संस्कृत वाक्य में से किन अक्षरों का है और कहाँ से निकालते हो ? यदि कहो कि हम अनुमान से यह अर्थ निकालते हैं तो अन्य कर्म जो ऊपर दिखलाये गये, ( उन्हों को भी अद्वा से होने के कारण आद्वा कहना ) ऐसा अर्थ आप लोगों के विशाल बुद्धि में नहीं समा सकता ? अर्थात् अनुमान से जैसा यह अर्थ कि अद्वा से जीवित माता पिताकी सेवा का नाम आद्वा वैसा श्रद्धा से उपरोक्त अन्य कर्मों को करने का भी नाम आद्वा हो सकता है । फिर यह क्यों वेद शास्त्र विशद् अर्थ करके ठगीसे सरल आस्तिकों को उन्माद से गिराने के लिये

मिथ्या मनगढत संर्घ करते हो ! कि जीवित भाता पितादि की सेवा का ही नाम श्राद्ध है । इसके लिये आपके पास कोई वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है कि जिससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाय कि जीवित भाता पितादि की सेवा को ही श्राद्ध कहना और न कदापि मृतकों के निमित्त दिया जाय उसको । यदि कोई ऐसा ( मृतकों के निमित्त पिण्डदान के निषेध रूप ) वेदशास्त्रों में से प्रमाण आप जिद्दियों के पास हो तो कृपा करके शीघ्र स्पष्ट (जाहिर) करके अपना मुख उड़वल करो, अथवा ऐसा सावित करदेने के लिये यदि कटिबद्ध न होगे तो क्या सनातनी धर्मात्मा जन यह नहीं समझेंगे कि-इन आठ समाजियों का वेदोक्त धर्म और जीवितों का श्राद्ध भकना मिथ्या हल्ला और आस्तिक संप्रदाय को धोखा देना भाव ही है ! परन्तु शास्त्रोक्त श्राद्ध क्रम जिस किसी को भी देखना ही तो वह पारस्कर गृहसूच आश्वलायन श्रौत सूच, तथा परिशिष्ट कातीय श्राद्ध सूच आश्वलायन गृहसूच में एवं शांखायन श्रौत, आपस्तम्ब श्रौत इत्यादि ग्रन्थोंमें देखे तो स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि “श्राद्ध” किसको कहते हैं और उसका रहस्य क्या है “श्राद्ध” कोई अप्रसिद्ध ( छिपा हुआ ) क्रम नहीं है जिसके लिये प्रमाण देने की आवश्यकता पड़े, तथा पि वेद विहद्ध मतावलम्बी जिद्दी मनुष्यों के मद अहंकार रूप

अंधकार को सतुशास्त्र रूपी अखण्ड सूर्य के प्रखर तेज से निवारण करने के लिये दिग्दर्शन मात्र इस प्रथम अध्याय में और विस्तार पूर्वक द्वितीय अध्याय में यथायोग्य समाधान किया जायगा कि आद्व शब्द का शास्त्रों में कैसा अर्थ दिखाया गया है और उस का रहस्य क्या है ॥

यथा महर्षि मरीचि मुनिजन स्पष्ट करते हैं कि—  
प्रेतं पितृंश्च निर्दिश्य भोज्य यत् प्रियमात्मनः ।  
श्रद्धुया दीयते यत्र तच्छ्राद्वुं परिकीर्तितम् ॥

अर्थ—सात्त्विक भोजन जो अपने को प्रियहोय वह प्रेतयोनि में गये उस मृतक के निमित्त यथा नाम उज्ज्वारण करके श्रद्धा से जो कुछ दिया जाय उसको ही श्रद्ध कहते हैं वा उसी कृत्य का ही नाम श्रद्ध है। तथा महर्षि पुलस्त्य मुनिजनभी स्पष्ट कहते हैं कि संस्कृतंव्यंजनाद्यच पयोदधिघृतानिवत्तम् ।

श्रद्धुयादीयतेयस्मात्तेन श्राद्वुंनिगद्यते ॥  
देशेकालेचपात्रेच श्रद्धुया विधिनाचयत् ।  
पितृनुद्दिश्यविप्रेभ्यो दत्तंश्राद्वमुदाहृतम् ॥

भावार्थ—दूध दही और ची से पकाया हुआ अन्न आदि, श्रद्धा और शास्त्र विधि पूर्वक देश काल एवं सुपात्र ब्राह्मणों का ठीक २ विचार-फरके पितरों के निमित्त श्रद्ध के योग्य ब्राह्मणों को जो कुछ दिया जाय उसको ही श्रद्ध कहा गया है। तथा श्री योगी याज्ञवल्क्य मुनिजी ने आचाराध्याय में भी—

वसुरुद्राऽदितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः ।

प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितृनश्चाद्वैनतर्पिताः २६०॥

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानिच ।

प्रथच्छन्ति तथा राज्यं प्रीतान् णां पिता महाः । २७०॥

**अर्थ-** वसु तथा रुद्र एवं अदिति सुत ये तीनों पितर जो श्राद्ध के देवता हैं वो श्राद्ध करके स्वयं तृप्त हुए मनुष्यों के पितरों को भी तृप्त करते हैं । और श्राद्ध कर्ता के प्रति भी आयु, प्रजा, धन, विद्या स्वर्ग मोक्ष यथा योग्य सुख प्रदान करते हैं । इन वाक्यों से मृत पितरों का श्राद्ध चिह्न किया है । तात्पर्य यह कि जैसे परमात्मा के सृष्टि में देवलोक आदि अन्य लोक हैं और उन्हीं के अधिष्ठाता इन्द्रादि देव हैं तैसे कर्म-शा पितृलोकः वृहदारण्यक ॥

दक्षिणाम्रवणो वै पितृलोकः शतपथ—१३। ८। ४। ७॥

इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से एक पितृलोक भी स्वतन्त्र लोक है जिसके अधिष्ठाता अर्यमा अग्निष्वात्त एवं वसुरुद्राऽदिति सुतादि पितृदेव हैं । ‘पितृणामर्य-माचारिस्म’ श्रीमद्भगवद्गीता अ७ ४७ श्लो० १७५

**अर्थात्-** पितृलोक निवासी जो अर्यमा नामक पितर है वह मेरा स्वरूप है । सो ये जो अर्यमादि पितृ-देव हैं वे ही इस श्राद्ध कर्म में पूजनीय देवता हैं और इन्हों को ही वेद में देवगन्धर्वों से शतगुणित

अधिक आनन्द का भागी कहा है । \* और मरण अनन्तर पुरुष किस योनि में गया है—और कौन देश में है और उसके नाम पर उस के वंशीय पुरुषों ने क्या २ शास्त्रानुकूल कृत्य किया है, इत्यादि सब कर्म के बह समालोचक हैं ? और वही पितृ देव वैदिक मन्त्रोंसे आहूत हुये मृत पितरों के वंशीय पुरुषों कटके किये हुये आद्व कर्म में उपस्थित होते हैं और आद्व प्रदत्त आहुति तथा भद्र भोज्य आदि सामग्री के मारांश(तत्व)को वासना रूप से ग्रहण करके आद्व कर्ताके प्रति प्रसन्नता पूर्वक आशीषादि देकर वैदिक मन्त्रों से विसर्जित हुये मृतपुरुषों को यथा योग्य सुख का भागीकरते हैं । ( यह सब आगे सप्तमाण स्पष्ट होगा )

यद्यपि उन पितरों का स्वरूप हम इन चर्म चक्षु-  
ओंसे अवलोकन नहीं कर सकते हैं तथापि शास्त्रीय

\* सर्वीच, सर्वभौम, चक्रवर्ती, निष्ठकंटक राजप भोक्ता, निखिल कला विशिष्ट को अति श्लिष्ट राजा है उसको जो आनन्द है (जिसको भनुष्यानन्दकी सीमा कही जाती है) उस भनुष्यानन्द से शतगुणित अधिक आनन्दभनुष्य गधवाँ को है। और उन्हों से शतगुणित अधिक आनन्द देवगधवाँ को है और उन से शतगुणित अधिक आनन्द पितृजीक निवासी पितरों को है, यह सब तैत्तिरीयारथयक तथा वृहदारथयक में स्पष्ट है। इस निये वे पितृजीक निवासी पितृदेव महान् धैर्य वाले समर्थ और सर्वज्ञ हैं ॥

पुरुष ( अत्यन्त सत्यवादी पूर्णरीति से शास्त्र मर्यादा पालन करने वाले हृषि अद्वालु पुरुष ) के मन में पितरों का अदृश्य होकर आना अथवा यों कहें कि उस पूर्ण अद्वावान् पुरुषको ज्ञानचक्षु से पितरों का दर्शन होना कुछ असंभव नहीं है । क्योंकि योग शास्त्र में यह विषय स्पष्ट है कि यदि काय रूपमें पुरुष संयम करे तो वह पुरुष अन्यों से क्षदृश्य हो कर यावत् व्यवहार कर सकता है । ( योग दर्शन के तृतीय विभूति पाद के २१ वें सूच में यह स्पष्ट है । ) तथा श्री वाल्मीकि रामायण में सती श्री सीताजी ने अपने मृत श्वशुर श्री दशरथ जी का आद्भुतोक्ता मुनीश्वरों के देह में दर्शन किया था यह असंग आगे चतुर्थ अध्यायमें स्पष्ट खोला गया है—  
इति श्री आद्भुतृ मीमांसायां आद्भुतव्यार्थ  
तत् स्वरूप रहस्यं च प्रदर्शने प्रथमोऽध्यायः ॥

महाशय जी ! अब आपको निःसदैह स्पष्ट ज्ञात हुआ होगा कि आद्भुत शब्द का शास्त्रोक्त अर्थ क्या है और किस कर्म का नाम आद्भुत है । तथा उसका रहस्य क्या है सो भी मालूम हुआ होगा ॥

## अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

समाजी—श्री परिणडत जी ! यह आद्धू शब्द का शास्त्र सम्मत शुद्ध अर्थ तो अच्छी तरह मेरी समझ में आया परन्तु अब कृपा करके इस विषय में मुझे कुछ और ज्यादा वेद शास्त्रों के प्रबल प्रमाणों से स्पष्ट करके बतलाओ कि आद्धू मृतकों का ही होता है वा कभी जीवित माता पितादिका भी ?

सनातनी—महाशय जी ! यदि आप जिज्ञासु होकर इस विषय का पूर्ण रीति से वेदादि शास्त्रों द्वारा निर्णय कराना चाहते हो तो मैं भी इस तुम्हारी शंका का वेद शास्त्रों के प्रबल प्रमाण व सद्गुत्तियों से निवारण करता हूँ आप अब सावधान होकर और पक्षपात रूप जिद्ध की लाठी को छोड़कर मेरसे सुनो !

“आद्धू” जिस कर्म का नाम है वह तो सदैव मृतकों का हो होता चला आया है और हो सकता है-जीवित माता पिता आदिकों की सेवा धर्म शास्त्रों में लिखे अनुसार अवश्य करना चाहिये वह पितृ मातृ सेवा एवं गुरु सेवा आद्धू से भिन्न एक धर्म सम्बन्धी कर्म है जीवितों की आद्धू पद्धति अद्यपर्यन्त बल्कि आर्यसमाजियों से भी न बनी और न उपी देखने में आती और न कभी जीवितों का आद्धू होना कहीं देखने में आता है । तथा

आद्व कर्म की पद्धतियें जिन ब्राह्मणग्रंथ मंत्र तथा श्रौत गृह्णसूचों से धनी हैं उन सबों में मृतकों का ही आद्व सिद्ध है । इस लिये जीवितों का आद्व कहना निर्मूल केवल हठ मात्र है ॥ अब इस विषय को सिद्ध करने के लिये प्रथम मंत्र संहिता ( वेद ) के ही प्रमाण दिये जाते हैं । सचेत होकर सुनो ।

अथर्ववेद कां० १६ अनु० २ मंत्र ४८ ॥  
 “उदन्वतीद्यौरवमापीलुमतीतिमध्यमा ।  
 तृतीयाहप्रद्यौरितियस्यां पितरआसते” ॥

अर्थ—ब्रह्माण्ड के तीन लोकों में बीच का अन्तरिक्ष ( भुवः ) लोक कहाता है इस मध्य लोकके मंत्र में तीन भाग किये [ उदन्वती द्यौरवमा ] सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि ज्योतियों का प्रकाश जिसमें फैलता है इस लिये वह ( अन्तरिक्ष द्यौरी ) कहाता है । उस में पृथ्वी की ओर का भाग जल वाला अर्थात् अंतरिक्ष ( आकाश ) में जो नीलापन द्याया हुआ दीखता है यह सूहम जल है इस जल वाले अन्तरिक्ष भाग का नाम “उदन्वतीद्यौ” है । ( पीलुमतीति मध्यमा ) और जल से ऊपरी आकाश का मध्यम भाग “पीलुमतीद्यौ” कहाता है । और ( तृतीयाह प्रद्यौरिति ) इसब से ऊपरी अन्तरिक्ष का तोसरा भाग सूर्यादि के प्रखर प्रकाश वाला होने से “प्रद्यौरी” कहाता है ( यस्यां पितर आसते ) इसी “प्रद्यौरी” नामक अन्तरिक्ष के तृतीय भाग में पितृ-

देव रहते हैं । मिय महाशय जी ! इन्हीं पितरोंका आद्ध्र होता है । मंत्र में कहे तीसरे श्लाकाश में रह-  
ने वाले स्थूल देहधारी जीवित पितर सिद्ध नहीं हो सकते । स्थूल देहधारी पितर पृथ्वीमें रह सक-  
ते हैं तृतीय श्लाकाश में नहीं । इससे जीवितों का पितर होना और उनका आद्ध्र मानना दोनों अंश खण्डित हो जाते हैं । हमारा पक्ष केवल यह नहीं है कि हम मृतक का ही आद्ध्र सिद्ध करें किन्तु ह-  
मारा मुख्य पक्ष यह है कि स्थूल देहधारी अपने विद्यमान माता पितादि की सेवा का नाम आद्ध्र नहीं है । जीवित और मृत शब्दों में कई कुतर्क हो सकते हैं जो मृत हैं वो भी जीवित हैं और जो जीवित हैं वे भी मृत हैं । क्योंकि जो मरे हैं वे कहींनकहीं किसी योनि में जन्म लेकर जीवित कहे जा सकते हैं । देव तथा पि-  
तरों की भी योनि हैं उन में जीवित कहना बन स-  
कता है । और जो भनुष्यादि जीवित हैं वे भी पूर्व जन्मान्तर में मर चुकने से मृत कहे जा सकते हैं ।  
मृत शब्द की भाषा मुर्दा नहीं है क्योंकि मुर्दा शब्द का संस्कृत शब्द है । इस लिये शब्द नाम मुर्दा शरीर का आद्ध्र करना शास्त्रों का सिद्धान्त नहीं । मुर्दों का आद्ध्र कहना उन कुतर्कों लोगों का ग्रलाप भाव है । आत्मा वा क्षेत्रज्ञ न मरता है न जन्म लेता है किन्तु भूतात्मा मरता जन्मता है इस लिये [ अधा-  
मृताः पितृपु सम्भवन्तु । अथर्व० १८ । ४ । ४८ ॥ ]

मरे हुए प्राणी ( भूतात्मा ) पितृ योनि में उत्पन्न हों। इस शब्दवेद के प्रमाण से भी मिल्दा है कि मृत नाम मुर्द का नहीं किन्तु भूतात्मा का है। शुभ शूभ जन्म मरण भूतात्मा के होते हैं यह अंश मैत्र्य पनिपद् के तृतीय प्राठक में अच्छी तरह से वर्णन किया है। यादे मृत शब्द का भाषानुवाद कोई लोग करते हैं तो यह उनको समझ है किन्तु शास्त्रानुकूल नहीं है। इस लिखने से सेरा प्रयोजन यह है कि यदि कोई कुतकी हमको पकड़े ( कि जो लोग पितादि मर गये उन्होंने किसी योनिमें जन्मले लिया तो वे जीवित हुये उन्होंने का आद्ध तुम करते मानते हो इस लिये जीवितोंका ही आद्ध तुम ने भी माना वा मान लिया ) इस लिये इस कुतक को पहिले से ही निर्भूल काट देने के लिये हम अपने साध्य पक्षस्थ प्रतिज्ञा का स्पष्ट व्याख्यान कर देते हैं कि हम उन पिता मातादि का आद्ध शास्त्रानुकूल मानते हैं और करते हैं कि जिन भौतिक शरीर से वे हमारे माता पितादि कहाते थे उस शरीर को छोड़कर अन्य किसी योनि में परिणत ( प्राप्त ) हो गये हों। यही उनका मरना वा मृतक कहाना है ॥

तथा—मंचरुंहिता शु० यजुर्वेद अ० १८ । ६०  
मंच मे अग्निध्वात्त अनग्निध्वात्त दो प्रकार के पितर लिखे हैं। यथा—

ये अग्निध्वात्ता ये अनग्निध्वात्ता मध्येदिवः  
स्त्रवयामादयन्ते० ॥ यजु० १६ । ६० एव

ये अग्निदग्धाये अनग्निदग्धा मध्येदिवः स्व-  
धया मादयन्ते ॥ ऋग्वेद मण्डल १० सू० १५  
मं० १४ तथा अथर्व० १८ । २ । ३५

जपर लिखे पतों पर उक्त मन्त्र वेद की तीन  
संहिताओं में है, यजुः संहिता में ( अग्निष्वात्त  
अनग्निष्वात्त ) पद हैं उन्हीं दो पदों के स्थान में  
( अग्निदग्ध अनग्निदग्ध ) पद ऋग्वेद अथर्ववेदमें लाये  
गये हैं ( मध्येदिवः स्वधया मादयन्ते ) इत्यादि पाठ  
तीनों वेदों में एकसा ही है इससे सिद्ध होता है कि  
ऋग्वेद तथा अथर्व० में जिनको ( अग्निदग्ध अनग्नि-  
दग्ध ) कहा है उन्हीं को यजु० में ( अग्निष्वात्त अन-  
ग्निष्वात्त ) कहा है । क्योंकि ऋग्वेद तथा अथर्व में  
अग्निष्वात्त अनग्निष्वात्त शब्द उन मन्त्रों में नहीं  
आये तथा अग्निदग्ध अनग्निदग्ध पद यजु० में नहीं  
आये इस से सिद्ध होता है कि अग्निष्वात्त और अग्नि-  
दग्ध का तथा अनग्निष्वात्त और अनग्निदग्ध का  
एक ही अर्थ है ॥

पाणिनीय व्याकरण के अनुसार इन शब्दों का अर्थ  
यह है कि—

"अर्ग्नना + स्वादिताः = अग्निष्वात्ताः । अग्नि-  
ना + दग्धाः = अग्निदग्धाः ।

जलाते हुए अग्निने जिनका स्वाद ले लिया वा  
अग्निने जिनको जलाया वे पितर अग्निष्वात्त वा अ-  
ग्निदग्ध कहाते हैं । इसी प्रकार तृतीया समासमें वेदोंमें-

लिखा अन्तोदात्तस्वर[ याथघञ्ज्ञताजविचकाणाम् ॥  
 पा० ६ । २ । १४४ सूच ॥ ( गत्यादिभ्यः परेषां यादि-  
 प्रत्ययान्तानामुत्तरपदानामन्त उदात्तो भवति ॥ ) ]  
 इस सूच से सिद्ध होता है । सूचार्थ यह है कि—गति  
 कारक और उपपदसे परे य, अथ, घञ्, त्त, अच्,  
 अप्, इत्त, और क प्रत्ययान्त उत्तर पदों को अन्तो-  
 दात्त हो, इससे अग्निकरण कारक से परे द्वात्त औ-  
 र दग्ध इन तत्त्व प्रत्ययान्त उत्तर पदों को अन्तोदात्त  
 स्वर हुआ है । यद्यपि ऐसी दशा में जब कि पाणि-  
 नीय व्याकरण के अनुसार तथा संहिताओं के पर-  
 स्पर मेल से अग्निद्वात्त पद का अर्थ सिद्ध होगया  
 कि जो अग्नि से जलाये गये वही पितर अग्निद्वात्त  
 तथा अग्निदग्ध हैं तब हमको अन्य प्रमाण की अ-  
 पेक्षा नहीं । तथापि ( अधिकस्याधिकं फलम् ) के  
 अनुसार शतपथ ब्राह्मण वेद का भी प्रमाण देते हैं ।

"यानग्निरेव दहन्त्स्वदयति ते पितरोऽग्निद्वा-  
 ताः ॥ शतपथ ब्रा० २ । ५ । २ । ३ ॥ "अर्थात्—जला-  
 ता हुआ अग्नि ही जिनका स्वाद ले लेता है वे पि-  
 तर अग्निद्वात्त कहाते हैं । इस शतपथ ब्रा० वेद के  
 प्रमाणसे भी सिद्ध हो गया कि मरने पश्यात् जो अ-  
 ग्नि से जलाये गये वे ही मृत पितर पितृयज्ञ वा आ-  
 द्ध में लिये जाते हैं, मरने परही मनुष्य के शरीर  
 अग्नि से जलाए जाते हैं, तथा जो जलाए गये वे  
 जीवित नहीं रह सकते हैं इससे आद्ध में मृत पितरों

का ही ग्रहण मन्त्र संहिता के प्रमाणों से चिद्ध हो चुका । ऋग्वेदादि भाग भूमिका पुस्तक के पितृपञ्च प्रकरण में स्वामीदयानन्द जी ने अग्निष्ठवात् शब्द का अर्थ यह किया है कि "अग्नि को अच्छे प्रकार जिसने ग्रहण किया है वे अग्निष्ठवात् कहाते हैं" । यह अर्थ संहिताओं के परस्पर मेलसे तथा शतपथ ब्राह्मण वेद से और पाणिनीय व्याकरण इन तीनों से विरुद्ध है । उक्त स्वामीजी की प्रतिज्ञा उसी भूमिका पुस्तकमें यह थी कि महीधरादि भाष्यकारों का किया हुआ वेदार्थ शतपथादि से विरुद्ध है और हमारा किया अर्थ शतपथादि ब्राह्मण भाग के अनुकूल होनेसे सर्वथा ग्राह्य होगा सो वह प्रतिज्ञा अब निर्मूल हो गई, स्वमुखसे स्वात्मशलाघा करनी मानो विद्वत्ताको शर्मना है स्वामीजीकी सत्यप्रतिज्ञाकी, एवं संस्कृत में विद्वत्ता की और सत्यवादीपने की तो बात ही क्या कही जाय ! आपतो पूर्ण संस्कृतज्ञ, सत्यवादी और पूर्ण त्यागी महर्पिंयों में मुकुट ये इसीलिये तो आप जृष्णिजीकी सेवा में "आधुनिक महर्पिंकी पोल" नामक एक टूट भेट की गई है कि जिस में आप श्री की विद्वत्ता का पूरा २ गान किया है अस्तु तात्पर्य यह कि स्वामी दया जी का किया अग्निष्ठवात् शब्दका अर्थ शतपथ ब्राह्मण से, संहिता से तथा पाणिनीय व्याकरणसे विरुद्ध वा अशुद्ध अवश्य है जिसका समाधान वर्तमान आम्यमन्यों

में से कोई भी नहीं कर सकता और जो कोई गिरा पड़ा समाधान करेगा वह युक्ति प्रमाणों से अवश्य कट जायगा और अग्निष्वात् तथा अग्निदग्ध आदि संहिता के मंत्रों से भरे हुए पितरों का आद्वापूजन होना अवश्य सिद्ध है जिसमें लोश भाव भी सन्देह नहीं। भनुष्यके मरने पर दो प्रकार की क्रिया होती है। एक तो भरे हुए मुर्दा को अग्नि में जला देना द्वितीय दो वर्षके भीतर जिन वालकों को वा कुष्ठादि ( कोड़ ) रोग वालों को वा जिन सन्यासी आदि के लिये शास्त्र में अग्निदाह नहीं कहा है उन को तथा जिनका अग्निदाह किसी खास कारण से न हो सके उन सबको जल वा बन में फेंक देना वा खोद के गाढ़ देना यह दो प्रकार की क्रिया होती है। ये सब अनग्निष्वात् वा अनग्निदग्ध कहाते हैं। ( अनग्निदग्ध ) वा ( अनग्निष्वात् ) का यह अर्थ होगा कि जो २ अग्नि से नहीं जलाए गये। उनके विषय में वेद का यह मंत्र प्रमाण है कि अर्थव० कां० १८।२।३४॥  
 येनिखातायेपरोप्ता येदग्धायेचोहुत्ताः ।  
 सर्वांस्तानग्न्यावह पितृन्हविषेभत्तवे ॥

अर्थ—मरने पर जिनको खोदफे गाढ़ दिया, जो बन वा जंगल में छोड़ दिये गए, जो अग्नि में जलाए गए तथा जो युधिष्ठिरादि के तुल्य इसी शरीर से स्वर्ग को चले गए, हे ! अग्निदेव उन सब पितरों को हविष खाने के लिये इस आद्वादि पितृकर्म में बुलान्ते ।

इस मन्त्रके निर्विकल्प सीधे २ अक्षरार्थसे स्पष्ट ही सिद्ध है कि मरने पश्चात् ही पृथ्वीमें गाढ़देना आदि हो सकता है इस से आद्य में मृत पितरों का आवाहन करना सिद्ध है । वर्त्तमान पार्वणादि आद्योंमें—

आयन्तुनः पितरः से । म्यासोऽग्निष्वात्ताः प-  
थिभिर्देवयानैः ॥

अग्निमें जिनका दाहकर्म होचुका है ऐसे सोम गुणों वाले हमारे पितर देवयान अन्तरिक्ष मार्गसे इस आद्य में आवें । इस मन्त्रके अर्थसे भी मरे हुए पितरोंका आद्य सिद्ध है । तथा—

ये पूर्वापरागतो अपराः पितरश्च ये । तेभ्यो  
घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ अर्थात् ०  
कां० १८ अनु० २ । मं० १२ ॥

अर्थात् पूर्व जो गये और जो जा रहे हैं उन पितरोंके लिये घृतकुल्या शतधारा होकर प्राप्त होवें । यहां मृतकश्चाद्य निन्दकोंसे पूछना चाहिये कि वे यह तो बतावें कि उक्त मन्त्र में वो आपके कौन जीवित पितर हैं जो पूर्व चलेगये और जा रहे हैं ? और किस तरहसे आप उन चलेगए पितरोंको घृत की आहुतियें दे सकते हो ? क्योंकि वे तो गए और आहुति लेने वाला तो जब समझमें अर्थात् सामने हाजिर होता है तब ले सकता है सो तो उक्त मन्त्र के “ये पूर्वापरागता” इस पक्ष में वर्त्तमान किया है ही नहीं वहां तो पूर्व चलेगये पितरोंका जिकिर

जनितमपराधूम् ( पुरुषता ) मनुष्यत्वेन हेतुना ( कराम ) वयं कृतवन्तः हे पितरः तेन केनचिदपराधेन ( नः ) अस्मान् मा ( हिंसिष्ट ) वधिष्ठु ।

भाषार्थ—हे (विश्वे) निखिल पितरो ! आप(जनुआच्य) वाम जानु यानी बायें घोंटु को भूमि पर निपात (खोर लगाकर) कर (दक्षिणतः निषद्य) इस शग्नि से दक्षिणकी ओर स्थित होकर (इमं यज्ञम्) इस हमारे यज्ञ को [अभिगृणीत] स्तवन यानी अंगीकार कीजिये, और [पुरुषता] चात्चल्य स्वभावरूप

मनुष्यपने से, आपका [यह आगः] [कराम] जो कुछ कर्म वैगुण्ययुक्त [अर्थात् इस यज्ञ कर्म में कुछ कर्मी वा चुटि होजाने रूपी] अपराध किया हो तो तिस किसी अपराध से [नः] हमको [माहिंसिष्ट] हिंचन मत करो । इत्यादि

दिग्दर्शन मात्र दिखायेइन वेदमंत्रो द्वारा मृत पितरों के ही निभित्त आद्वादि यज्ञ कर्मों में पितृलोक के अधिष्ठात्री देवों का आवाहन—नमस्कारादि स्तुति और पूजन सिद्ध है । तथा—

“तिरङ्गव वै पितरो मनुष्येभ्यस्तिरङ्गवैतद्वति” ॥ शतपथ ब्रा० २ । ३ । ४ । २१ ॥

अर्थात्—पितर लोग मनुष्यों से अदृश्य होते हैं और पितरों का भोजन भी अदृश्य सूझ होता है । इस कथन से भी सिद्ध है कि स्थूल देहधारी पितर होते तो अदृश्य नहीं कहे जाते । इसलिये पिण्डदा-

न संबन्ध में अदृश्य पितर कहने से वे ही प्राण श-  
रीरी वायुकाय सूहम अदृश्य पितर लेने हैं । इस से  
भी जीवितों का खण्डन तथा मृत पितरों का आद्व  
चिद्ध है । तथा—\*शतपथ ब्राह्मण में पितरों के लिये प्र-  
त्येक महीने में एक बार और मनुष्यों के लिये प्रति  
दिन सार्व प्रातःकाल दोबार भोजन प्रजापति ने  
नियत किया । यदि जीवित पितरों को मानें तो वे  
मनुष्य ही हुए तब बताओ कि वे ऐसे कौन मनुष्य  
हैं जो महीने में एक बार अमावास्या के दिन ही  
भोजन करते हों ? ऐसा मनुष्य कोई न हो सकने  
के कारण मनुष्यों से भिन्न मरणानन्तर पितृयोनि  
गये पितर ऐसे समर्थ होजाते हैं—जिनको महीने भर  
में एक बार ही भोजन भिलने से तृप्ति रहती कष्ट नहीं  
होता । इससे भी मृतकों का आद्व चिद्ध है ।

**शांखायन श्रौतसूत्र पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण**  
में ”न जीव पितुरस्त्,” अ० ४ क००४ सू० ७ ॥

**अर्थात्**—जिसका पिता जीवित हो वह पिण्ड  
पितृयज्ञ न करे उस के लिये पिण्डपितृ यज्ञ नहीं  
है । इस प्रमाण से भी जीवित का निषेध करने से  
मरे पितरों का आद्व अर्थापत्ति से चिद्ध है । अर्थात् जि-  
सका पिता जीवित हो वह आद्व न करे तो यह आ-  
या कि जिसका पिता मर गया हो वह पिण्डपितृ

\* शतपथ ब्रा० का० २ प्रा० ३ मा० २ श्रौत ३ ये मंत्र स्प-  
ष्ट रूप से आगे अध्याय ५ में वर्णन किये गये हैं वहां देखो ॥

यज्ञ करे तथा शास्यायन श्रौत सूच शाकमेध पर्वस्य  
महापितृयज्ञ प्रकरण अ० ३ कं० १६ सूच २ ।

[ पितृभ्यो वा सोमवद्युयः पितृभ्योत्तर्हिंप  
द्वभ्यः पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्यः ] ।

सोमवात्, वर्हिंयद् और अग्निष्वात्त इन तीन  
नाम वाले पितरों के लिये महापितृयज्ञ में भाग  
दिये जाते हैं । इन में अग्निष्वात्त पितर बोही हैं जो  
मरणानन्तर अग्निदाह को प्राप्त हुए । इस से भी मृत  
पितरोंके लिये आद्व होना सिद्ध है तथा पिण्डपितृ  
यज्ञ प्रकरण कात्यायन श्रौत सूच २३ अ० ४ कं० १ ।

[ ग्रेतेभ्योददाति ]

ग्रेत नाम भरे हुए पिता पितामहादि के लिये  
पिण्ड देता है अर्थात् देने चाहिये । अर्थात् जिसे श्राया  
कि जीवितों के लिये नहीं । इस से भी भरे हुआ के  
लिये पिण्डदान देना सिद्ध है तथा आपस्तम्ब श्रौत  
सूच पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण ।

यदि जीवितपिता न दद्यादाहोमात्कृत्वा  
विरमेत् ॥

यदि जिसका पिता जीवित हो वह पिण्डदा-  
न न करे तो होम पर्यन्त ही पिण्ड पितृ यज्ञ करके  
ठहर जावे । इससे भी भरे हुओं के लिये पिण्डदान  
सिद्ध है । तथा मानव कल्प सूच में लिखा है कि ।

यदि दद्यादु येभ्य एव पिता दद्यात् तेभ्यो  
दद्यात् ॥

जिसका पिता जीवित हो वह यदि पिण्डदेवे  
तो जिन पितामहादि मरों के नाम से पिता देवे  
उन्हींके लिये पुत्र भी पिण्डदान करे अर्थात् अपने  
जीवित पिता के नाम से पिण्डदान न करे । इससे  
भी मरे हुए पितादि के लिए पिण्डदान सिद्ध है ।

तथा—यजुर्वेदीय कठ शंखा के काठक औत  
सूच में लिखा है कि—

“पिता पुत्रौ चेदाहितार्नो स्थातां येभ्यः  
पिता तेभ्यः पुत्रौ दद्यात् । पिता प्रेतः स्थात् पि-  
तामहो जीवेत् पित्रे पिण्डं निधाय पितामहा-  
त्पराभ्याम् द्वाभ्यां दद्यादिति ॥

यदि पिता पुत्र दोनोंने विधिपूर्वक औत समा-  
न्त अग्नियों का स्वापन किया हो तो प्रत्येक अ-  
मावास्या के दिन दोनों को पिण्ड पितृयज्ञ करना  
चाहिये । इस दशा में जिन तीन के नाम से पिता  
पिण्डदान करे उन्हींके लिये पुत्र भी पिण्ड देवे  
किन्तु पुत्र अपने जीवित पिता के नाम से पिण्ड-  
दान न करे । और यदि पिता मर गया हो पितामह  
(दादा)जीवित हो तो पुत्र को चाहिये कि पिता  
के नाम से पिण्डदान देके जीवित पितामह (दादे)  
को छोड़ उससे पूर्वके प्रपितामह बृद्ध प्रपितासह दोनों  
के लिये पिण्डदान देवे । यह विषय ऐसाही जपों  
का त्यों मनु० अ० ३ श्लो० २० । २२१में भी लिखा

है जिस से सिद्ध है कि मृत पितादिके लिये पिण्डदान होता है इसीका नाम आद्व है । प्रयोजन यह कि प्रमाण से तो अच्छी प्रकार सिद्ध है कि “आद्व” मरे हुए पितादिका होता है जीवितों के सत्कारका नाम „आद्व“ किसी ग्रंथ से कदापि सिद्ध नहीं हो सकता है, इत्यलम् विद्वत्सु ॥

इति श्री श्राद्धपितृमीमांसार्थं मृत पितृणा-  
मेव श्राद्ध सिद्धिप्रदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥

## ॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

समाजी—श्री परिण्डतजी महाराज ! मृतकोंकी आद्वसिद्धि में ये अत्यन्त प्रथल, शास्त्रप्रमाण और सद्युक्तियां सुनकर अब भेरे हृदयके संशय रूप कपाट खुल गये हैं और मुझे दृढ़ विश्वास हुआ है कि „आद्व“ मृतकों का ही होना निःसंदेह सत्य एवं वेदानुकूल है । इसलिये हम—अब इन आपके दिये शास्त्र प्रमाण रूप अस्त्रोंको लेकर अपने आर्यसमाजी महाशयोंको अविद्या—हठ और पक्षपात रूपी महाशब्दुओंके पञ्चेसे ढुड़ाने की एवं वेदोक्त सन्मार्ग पर लाने की यथासंभव कोशिश करते रहेंगे । परन्तु हे परिण्डतजी ! मुझे यह तो बताओ कि पिता पुछ का संबन्ध शरीरों के साथ है वा जीवात्मा के साथ ? । यदि शरीर के साथ मानो तो यह शरीर यही जला दिया राख भस्म होकर मट्टी में मिल

गया अर्थात् रहा ही नहीं उस शरीर रूप पितामा आद्ध पुत्र करही नहीं सकता । और जीवात्मा किसी का पिता वा पुत्र होता ही नहीं । क्योंकि जैसे जीवात्मा न स्त्री न पुरुष और न नर्पतक होता [श्रुतिः—नैव स्त्री न पुमानेष नचैवायं नयुपुतकः०] वैसे ही वह किसीका पिता वा पुत्र भी नहीं होता । फिर तुम पिण्डदान का फल किस को पहुंचाते हो ? । अर्थात् मरने पश्चात् उस २ पितादि को सुख पहुंचाने के लिये आद्धकरना व्यर्थ समझा जाता है ।

सुनातनी—प्रिय महाशयजी ! क्या आप गुरु शिष्य पिता पुत्रादिका संबन्ध नहीं मानते ? यदि मानते हो तो शरीर के साथ वा जीवके साथ, किस के साथ मानते हो ? यदि कहो कि हम प्रत्यक्ष विद्यमान संबन्ध मानते हैं मरने पश्चात् किसी के साथ नहीं मानते तो यह बताओ कि स्वा० दयानन्द को स्वर्गवास हुआ कहने में प्रसन्न और नरक हुआ कहने में आपसन्न व्यर्थ होते हो ? तथा स्वा० द० को कोई बुरा कहे या लिखे तो उसके साथ। सड़ने को तयार व्यर्थ होते हो ? क्योंकि स्वा० द० का शरीर भस्म हो के पंचतत्व में मिल गया उसके साथ तुम्हारा कोई संबन्ध हो ही नहीं सकता रहा जीवात्मा सो जैसे वह किसी का पिता वा पुत्र नहीं वैसे ही वह किसी का गुरु वा उपदेशक भी नहीं ठहर सकता । इसलिये

तुम को स्वाठ दयानन्द का कभी नाम भी नहीं लेना चाहिये । और यदि तुम अब उन की प्रशंसा में सन्तुष्ट प्रशंसन होते और उन को बुरा कहने वाले पर अप्रशंसन होते हो तो तुम्हारे मन से ही मरे जीवोंके साथ संवल्प सिद्ध हो गया । यह उत्तर तो वैसा ही है जैसा प्रश्न था अब आगे आप जिज्ञासु महाशय को तत्त्वांश समझाने के लिये इसी अंश पर कुछ विचार दिखाते हैं वह प्रश्नका समाधान भी होगा और शास्त्रानुकूल चिद्धान्त ज्ञान का हेतु भी होगा । परन्तु इस गहन विषय को आप पूर्ण ध्यान लगाकर धैर्य से सुनेंगे तो आशा है कि आप श्रीघ्र ही इस उच्च चिद्धान्त को ठीक २ समझ कर पूर्ण लाभ ले सकेंगे ॥

“जीव वा जीवात्मा क्या है” इस विषय पर अनेक विचार ग्रन्थों में मिलते हैं जिनका व्याख्यान यहां छेड़ा जाय तो एक यही बड़ा व्याख्यान चल जावे । इस लिये अधिक शास्त्र सम्मत चिद्धान्त जो वास्तव में वेदानुकूल है वही यहां कहते हैं कि—

वेदके (द्वाषुपणी०) मन्त्रमें दो आत्मा कहे हैं इन दोनोंमें (अनश्वन्योऽभिचाकशीति) जो शुभाशुभ फल सुख दुःख भोग न करता हुआ केवल प्रकाश करता साक्षीरूपसे स्थित है जिसके लिये उपनिषदोंमें (साक्षी-चेताकेवलो निर्गुणश्च) इत्यादि कथन लिखा गया है । सो कैसे जपां पुष्पकी द्वाया (फलक वा आभास) स्वच्छ कांच आदि से समीप होने के कारण घड़ने से

कांच आदि ठीक उसी पुष्पके रंग से रंगा दीखता है। उसी के अनुसार ऊपर लिखा गया साक्षी आत्मा का आभास अन्तःकरणमें पड़ता है। वास्तवमें अन्तःकरण जड़ है, पर चेतन के आभास से चेतन ही अतीत हुआ करता है। अपने आभास द्वारा अन्तःकरण को सचेत करता है इसीलिये उपनिषदों में इस आत्मा को चेता कहा गया है। इसी चेता का नाम सेवज्ञ है यही साक्षात् ईश्वर परब्रह्म परमात्मा है। श्री गीता में लिखा है कि—“सेवज्ञं चापि नां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत !” अर्थात् सब क्षेत्र रूप शरीरों में क्षेवज्ञ मुझे परमेश्वर को ही जानो। तथा मेनु ० अ० १२ में लिखा है कि—... .

“योत्स्थात्मनः कारयिता तंक्षेत्रज्ञं प्रचक्षते ।

यः करोति तु कर्माणि सभूतात्मोच्यते बुधैः १२

जीव संज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ।

येन वेद्यते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥१३॥

तावुभौ भूतसपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव च ।

उच्चावच्चेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिप्रुतः ॥१४॥

अर्थ—जो दृश सचेत शरीरसे कर्म कराने वाला है उसको परिडत लोग क्षेवज्ञ कहते हैं, और जो शुभाशुभ कर्म करता है वह भूतात्मा नाम शरीर कहाता है। तथा शरीर के साथ ही आविर्भूत ग्रकट होने वाला जीव संज्ञक तीसरा आत्मा उन दोनों

से अभिन्न है । शरीरधारी इसी जीवं रूप साधन से शरीर धारण के समय सब सुख दुःख को जानता है । वे दोनों जीव नाम महत्त्व वा बुद्धि तथा क्षेत्रज्ञ पञ्चभूत रूप स्थूल सूक्ष्म शरीर से मिले हुए सब छोटे बड़े शरीरों में व्यापक परमात्मा के सहारे से ठहरे हुए हैं । जैसे सूर्य वा दीपकादि का बाहरी प्रकाश अंगों से दिखवाता है वैसे ही क्षेत्रज्ञ साक्षीरूप से अपनी चेतना द्वारा स्थूल सूक्ष्म शरीर से कर्म कराता है । इसी लिये उपनिषदों में ईश्वरको [चेतन-शेतनानाम् ] चेतनोंका भी चेतन कहा है । जाननेका साधन जिससे सुख दुःख जानते हैं वही जीव है और जानने वाला वा करने वाला भूतात्मा है । भूतात्मा और शरीर एक ही के नाम हैं । शरीर तीन प्रकार का है—एक स्थूल द्वितीय सूक्ष्म तथा तीसरा कारण शरीर है । यद्यपि प्रत्यक्ष में स्थूल शरीर कर्म करता हुआ दीखता है । परन्तु स्थूल वास्तव में कर्ता नहीं किन्तु सूक्ष्म शरीर मुख्य कर कर्म करने वाला है । स्थूल शरीर का नाम अद्वमयकोष है । प्राणमय और मनोमय कोष का मुख्य संबन्ध सूक्ष्म शरीर के साथ है । मैत्र्युपनिषद् में भूतात्मा शब्द से इसी सूक्ष्म शरीरका गमनागमन जन्म मरण के साथ भाना है । यह वर्वतन्त्र नियम है कि जो पदार्थ जैसा स्थूल दीखता है वह जैसा ही ज्यों का त्यों सूक्ष्म दशा में भी अपद्यप होता है । क्योंकि सूक्ष्म से ही सब स्थूल प-

दार्य वृद्धिको प्राप्त हो जाते हैं और स्थूल के अंदर सूक्ष्म रहा करते हैं। जैसे स्थूल वृक्ष अपने सब अंशों सहित प्रत्येक बीज ( आम की गुठली आदि ) में विद्यमान रहता है और आम आदिके पेड़ ( युर ) में आम के फल और बीज का भी सूक्ष्म कारण विद्यमान है वैसे ही मनुष्यादि के स्थूल शरीरों के भी-तर सूक्ष्म और कारण शरीर विद्यमान हैं। यही सूक्ष्म शरीर नामक भूतात्मा देव-मनुष्य और तिर्यग् आदि योनियोंमें जाता है यही देव-पितर बनता है इसीके साथ जीवसंज्ञक महत्त्व भी तिरोभूत दशामें मरणानन्तर रहता है। सूक्ष्म शरीर के साथ स्थूल शरीर का ऐसा ही संबन्ध है जैसा धी के साथ दूधका है। अर्थात् स्थूल का साररूप धृतके जगह पर सूक्ष्म शरीर है और धृत के निकल जाने पर जो दशा दूध की होती वही दशा सूक्ष्मशरीर के निकल जाने पर स्थूल देह की हो जाती है। और जब तक दोनों मिले हुए हैं तब तक दूध के समान हैं। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर का सार (तत्व) है इसकी सिद्धि के लिये छान्दोग्य उपनिषद् में स्पष्ट ही खोलकर लिख दिया है । तद्यथा—

“दध्रः सोम्य मथयमानस्य योऽणिमा स ऊ-  
र्ध्वः समुदीपति तत्सर्पिर्भवति ॥१॥ एवमेव खलु  
सोम्याक्षस्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समु-

दीपति तन्मनो भवति ॥ २ ॥ अपार्थं सोम्य  
पीयमानानां योऽणिमा स उधर्वः समुदीपति  
स प्राणो भवति” ॥ ३ ॥ इत्यादिछान्दोऽप्र०६। खं०६॥

हे सोम्य श्वेतकेतु ! जैसे दही के मथने पर जो सूक्ष्म सार भाग ऊपर आजाता वह धी होता है वैसे ही खाये हुए अन्नका, जो सूक्ष्म सारभाग ऊदर से ऊपर हृदयादि में आ जाता है वह मन होता है । इस से मन आदि सूक्ष्म शरीर स्थूल देहका सार होना स्पष्ट सिद्ध है । यही सूक्ष्म शरीर देव पितृ आदि यो नियों में जाता है । इसी भूतात्मा नामक सूक्ष्म शरीर के साथ पिता पुत्रादि सब संबन्ध मरणाऽनन्तर भी रहता है और सूक्ष्म शरीर में सब अंगोपाङ्ग वैसे ही बने होते हैं जैसे स्थूल में हैं । हरसक वस्तु अन्य दशा में पहुंचने पर भी अपने संबन्ध को अपनी आकर्षण शक्ति से खेंचता है और वह खिंचा हुआ वहीं पहुंच जाता है । वैसे ही सूक्ष्म शरीर जहाँ जिस योनि में जन्म लेता वहाँ अपने स्थूल शरीर के परमाणुओं का खेंच कर फिर नया शरीर बनाता है । इत्यादि सब का सारांश यह है कि जीवात्मा कर्मानुसार स्थूल देह को छोड़ कर सूक्ष्म देहसे कड़ा होकर अन्य २ योनियों में जन्म लेता है और सूक्ष्म शरीर को भी वह जीवात्मा तब छोड़ता है जब कि वह संसार की वासना (अर्थात् बंधन रूप संकल्प विकल्प आदि कामनाओंसे) से निवृत होकर निर्वाय

पद ( मोक्ष को प्राप्त करने का अधिकारी बनता है । इस लिये हरएक आस्तिक को चाहिये कि अपने वेद शास्त्रों के आच्छानुसार शास्त्रविधि से अपने माता-पिता=गुरु आदिकों के गूढ़म शरीरोंसे मुख्य संबन्ध मानकर अवश्य ही उन सृत प्राणी के सुख प्राप्त्यर्थ और उन की सद्गत्यर्थ यथाशक्ति एवं पूर्ण अद्वासे अन्न-जल आदिसे विधिपूर्वक चत्कार (आद्व) करना चाहिये । और जब कि [ आत्मावै पुञ्च नामासि० ] [ आत्मावै जायते पुञ्चः ] इत्यादि श्रुति और [ मर्भी भूतवेह जायते ] [ भार्या पुञ्चः स्वकातनूः० ] इत्यादि स्मृतियों में पुञ्च से पिता का अभेद एकात्मा संबन्ध स्पष्ट दिखाया गया है तो फिर धिक्कार है उन्हों को जो फूट रूप भेद डालते हुए भी यह कहते रहते हैं कि हम ही माता पितादिके सच्चे सेवक और देश भक्त हैं । वाहरे सुपाद पुञ्च ! और देश भक्तो !! क्या यह दलील देना तो नहीं चाहते हो कि पितादि ने बुरे कर्म किये तो उन को अपने कर्मनुसार ईश्वरव्यवस्था से दुःख मिलना नियत है तब पुञ्च यदि उनको दुःख से छुड़ाना चाहता है तो ईश्वर की व्यवस्था नष्ट होगी, ईश्वर की इच्छासे विरुद्ध होगा । यदि तुम्हारी सेसी दलील है तो जीवित माता पिता गुरु आदि की सेवा शुद्ध-शा भी तुम सोगों को नहीं करनी चाहिये । क्योंकि पिछले जन्म के कर्मों का जैसा २ शुभाषुभ फल है-

श्वर ने उनको देना नियत किया है उस ईश्वरीय व्यवस्था में बाधा ढालने वाले तुम क्यों नहीं हुए? ऐसी दशामें जीवित माता पिता की सेवा भी तुम को छोड़ना क्यों नहीं पड़ेगी ? ॥ अर्यात् अवश्य ही इस तुम्हारी दी हुई दलील से जीवित माता पितादि की सेवा शुश्रूपा छोड़ना पड़ेगी । तो फिर बताओ कि आप कैसे माता पितादि के सेवक और देश भक्त हुए? और क्या अपने मृत पितादिकों की मिलकियत ( धन माल ) के मालिक होने के लिये तो ठीक २ उस मृतक पितादि से संबन्ध मानकर अपने को उसका हकदार बताओ परन्तु उस मृत पितादि के लिये शास्त्र आज्ञा से किंचित् जल और अन्न माच दान करनेमें बहाने और कुतर्क करते हो? बाहरे कृतज्ञ शार्यभासियो ! अफ़सोस ! और लड़ा !!! देखो तो सही कि अन्य धर्मो मुभलमान बादशाह शाहजहाँ अपने पुत्र औरंगज़ेब से हिन्दुओं की मातृ पितृ भक्ति की प्रशंसा करते हुए तथा हिन्दुओं के प्रति धन्यवाद देकर यह कहते हैं कि—

“ए पिसर तो अजब मुसलमानी ।

जिन्दगांरा व आव तरसानी ॥

आफरों हिन्दुअंरा सदवार ।

मुर्द गांरा दिन्द दाय में आव” ॥ ॥ ॥

इत्यलम् विद्वत्सु ॥

इति श्री श्राद्ध-पितृ भीमांसायां मृत संबन्ध निरूपणे तृतीयोऽध्यायः ॥

## अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

समाजी—श्री पण्डित जी महाराज ! अब मेरे हृदय के संदेह निवृत्त होते जाते हैं । आपने बहुत शक्ति ढंग से एवं धर्म शास्त्रोंके प्रबल प्रभागोंसे मृतकों के साथ [ अर्थात् आपने मृत माता पितादि रूप पितरों के सूक्ष्म शरीरों से ] संबन्ध होना ठीक २ सिद्ध किया इसलिये मैं आप को अनेक धन्यवाद देकर, फिर प्रार्थना रूप में यह भी पूछना चाहता हूँ कि कमनुसार उच्चनीच योनि में प्राप्त उन हमारे मृत पितादि को आद्व कर्म में दिया हुआ पिण्ड-भोजनादि कैसे पहुंचता है ? अथवा उन को आद्व भोजन पहुंचाने वाले वे कौन हैं जिन में द्वितीय शालौकिक सामर्थ्य है ?

सनातनी—महाशयजी ! ठीक आपने पूछा है यह प्रश्न इस समय बहुधा समाजी लोग सरल सीधे भोले सनातनियों से पूँछकर फूले खंगों नहीं समाते, अर्थात् इस प्रश्न का पूरा ठीक २ उत्तर व समाधान न होने से कठोर हृदय वाले एवं शास्त्रान्भिज्ञ समाजी भाई उन विचारे आस्तिक एवं को-मल हृदय वाले सनातनियों को सण भर में चबरा देते हैं और अपनी जय मान बैठते हैं । अस्तु जो हो ॥ अब आप ध्यान देकर सुनो । जैसे गर्भिणी अवला स्व पुरुष करके दिये गर्भपोषणार्थ अन्न आदि को भक्षण कर, स्वतः तृप्त हुई आपने उदर गत

गर्भ (वालक) को भी तृप्त करती है और गर्भपो-  
षणोपयुक्त ऋग्न देने वाले को भी प्रत्युपकार रूप  
फल से संयुक्त करती है अर्थात् उस पुरुष को भी  
फल भागी करती है । तैसे ही आद्व के देवता जो व-  
सु रुद्र अदिति सुतादि पितर हैं वह आद्व करके तृप्त  
हुए स्वसंगत पितरों को भी तृप्त करते हैं और आ-  
द्व कर्ता को भी स्वर्गादि फल से संयुक्त करते हैं इस  
अभिप्राय से ही—

“देवान् वै पितृन् प्रीतान्, म-  
नुष्याः पितरोऽनुप्रीयन्ते, तिस्त  
आहुतीर्जुहोति, त्रिनिंदधाति, पट्  
संपद्यन्ते,, ॥४॥

कृष्ण यजु० आरण्यक अष्ट०१ अध्या०३ अनु०१० ॥

अर्थात् देवता रूप पितरों के तृप्त होने के अ-  
नन्तर मनुष्य रूप पितर भी तृप्त हो जाते हैं, इसी  
से ही प्रथम देवता रूप पितरों के अर्थ तीन आहु-  
ति करनी चाहिये और फिर मृत मनुष्य रूप पि-  
तरों के अर्थ तीन पिण्ड देने चाहिये, इस प्रकार  
पट् दं संपद्य होते हैं ॥ तात्पर्य यह कि आद्व के दे-  
वता वसु रुद्रादि पितर आद्व कर्म में—

निमत्रितान्हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ।  
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथाऽसीनानुपासते १८६  
अध्या० ३ ॥ मनु०

निमंचित द्राष्टव्यों के शरीर में अदृश्य वायुकाय सूक्ष्म रूप से ग्रहण करके पिण्ड एवं द्राष्टव्य भौजनादि के तत्व \* को ग्रहण कर स्वयं तृप्त होके

\* शका—किस प्रकार वे मिहूदेव आहु भोजन के तत्व को ग्रहण करते हैं ?

समाधान—यह भी हनारे लिये कुछ आश्वर्य जनक नहीं है क्योंकि जब हम पशु पक्षि कीटों में परमेश्वर प्रदत्त अलौकिक सामर्थ्य को प्रत्यक्ष देख रहे हैं तो पितरोंके प्रति प्रदत्त अलौकिक सामर्थ्य हम को कैसे आश्वर्य जनक होगी ।

अथात्—जैसे परनात्मा प्रदत्त अलौकिक शक्ति बिशेष से हस्ती ( हाथी ) कपित्थ फल को भक्षण कर उस के अन्तर्गत सारांश को ग्रहण कर फिर लीदू के संग यथाविषय ( जैसे आगे या वैसाही सारा विना चबाया , हुआ ) उस फल को निकाल देता है । और जैसे भधुमक्षियां पुष्पों से नकरन्द ग्रहण कर नखुरचना करती हुईं पुष्प के किसी अंग को ह्रास ( तोर ) न कर उस के सारांश रूप सुगचितों ही ग्रहण कर लेती हैं । वा जैसे जलौका ( जोंक ) मिश्रित रक्त में से विकृत रक्त रूप एकांश को ग्रहण कर लेती है । वा जैसे कमल के किसी अंश को भी न घटाता हुआ भमर ( भौरा ) कमल गर्भ केशर नकरन्द का ग्रहण कर लेता है । जैसे

जल मिश्रित हुआ ( कीर ) में से हंस पक्षी जँल को पृथक् करके केवल तत्व रूप हूँध को ही ग्रहण कर लेता है । और इसी प्रकार अगुली के स्पर्श करने से लज्जावती लता ( शर्म वूटी ) में सफुचित होने की शक्ति भी जान लेती । और जड़ लोहे में भी चुंबक के सक्रिधान से अलौकिक शक्ति जाननी । इत्यादि यदि पदार्थों की विचित्र शक्तियों का मि-

फिर उन मृत मनुष्य पितरों को भी तृप्त करते हैं जिन के निमित्त आद्वा किया गया है। और आद्वा करने वाले पुण्यप्राप्ति को भी यथा योग्य स्वर्गादि फल प्रदान करते हैं। इस अभिप्राय को ठीक रसि-द्वा करने के लिये श्री योगीयाज्ञवल्क्य मुनि जी ने भी आचाराज्यायमें स्पष्ट दर्शाया है कि—

वसुरुद्राऽदितिसुताः पितरः आद्वा देवताः ।  
प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितृन् आद्वेन तर्पिताः २६६  
आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।  
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः २७०  
वसु तथा रुद्र एवं अदितिसुत, ये तीनों पितर जो आद्वा के देवता हैं वह आद्वा करके तृप्त हुए—मनुष्यों के पितरों को भी तृप्त करते हैं ॥ और आद्वा करने के प्रति भी आयु, प्रजा धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष यथायोग्य सुख प्रदान करते हैं ॥

एव शंतनुजीने भी पितामह जी के प्रति भी यहो समाधान किया है कि—

आप्यायिताश्चते सर्वे पुनराप्यायन्ति ॥

.

( महाभारते )

रूपण किया जाय तो एक यही वृहत्कथा होजाय, इसीसे इतने में ही सन्तुष्ट होना चाहिये। साराश यह है कि इस ही प्रकार परमात्मा प्रदत्त अलौकिक शक्ति विशेष से पितर देयता भी आद्वीय पदार्थों के साराश (तत्त्व) को घहणकरते हैं ॥ इति ॥

सब देवता रूप पितर मयम श्राप स्वयं तृष्णा  
होकर फिर अन्य मनुष्य पितरों को तृष्णा करते हैं ।  
तथा च—

एते श्राद्धं सदा भुवत्वा पितर् संतर्पयन्त्युत ।  
यत्र क्षचन धर्मज्ञा वर्तमानान्हि योगतः ॥

### विष्णुधर्ममोत्तर ॥

ये जो यसु रुद्र अदितिसुत, श्राद्ध भोजन से तृष्णा  
होकर फिर मृत पुरुषोंको तृष्णा करते हैं चाहे वे  
मृत मनुष्य पितर किसी भी योनि में हों । क्योंकि  
वह धर्मज्ञ पितृदेव योग बल रूप अलौकिक सामर्थ्य  
से हर एक प्राणी को जानते हैं ॥ इत्यादि धर्मशा-  
स्त्रोंके प्रभाणोंसे स्पष्ट चिद्ध है कि हमारे मृत पितर अ-  
पने अच्छे वा बुरे कर्मानुसार चाहे वे किसी भी यो-  
नि में क्यों न हों तो भी उन्हों को वहां उसी ही यो-  
नि में पितृदेवों के अलौकिक सामर्थ्य से पिण्डभोज-  
नादि शाद्धीय पदोर्ध सूक्ष्म रूप में पहुंच जाते हैं ।  
और जो श्री दशरथ \* महाराजादि जैसे अत्यन्त उ-  
त्तम पुण्य कर्मों के प्रभाव से देव पितर श्राद्धि उत्तम  
योनियों में गये हुए हैं वे स्वयं अग्निदेवकी, सहायता से  
वेद मंत्रों द्वारा श्राद्धत होकर श्राद्ध कर्म में निमंत्रि-

\* ग्रह श्री दशरथ महाराजकी कथा श्रान्ते पंचन अ-  
च्याय में स्पष्टरूप से वर्णन की गयी है—जहां श्री जानकी  
जी निमंत्रित मुनियों के देह में अपने श्वगुर दशरथजी  
का दर्शन करके उक्तित होकर द्विष्ट गई थीं ॥

त ब्राह्मणों के देह में अदृश्य रूप से आकर पिण्डभो-  
जनादि का तत्व (सारांश) ग्रहण करके तृप्त होजा-  
ते हैं। इस की सिद्धि में वेद का प्रमाण यह है कि-

ये ऽग्निदं ग्धा + ये ऽनग्निदं-  
ग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादय-  
न्ते । तेभिः स्वराडससुनीतिसे-  
तां यथावशं तन्वं कल्पयस्व,  
मंत्र १४ ॥

ऋग्वेद श० ६ व० १८ मरण० १० अनु० १ श० ०१५  
अष्ट० ३ ॥ शु० यजु० अध्या० १८ म० ६० में ( 'अग्नि-  
ष्वाक्ता०' ) यह पद है ॥

अन्वयार्थ.—ये ( अग्निदं ग्धा॒ः ) इमशानैः ग्रा-  
वता॑ः ये च ( अनग्निदं ग्धा॒ः ) इमशानकृत्यर्हितः  
ये च ( दिवो ) द्युलोकस्य मध्ये स्वधया (मादयन्ते)  
तृप्ताश्चरन्ति, है (स्वराट्) दीप्यमान अग्ने ! ( तैः  
पितृभिः ) तेभ्यः पितृभ्य (असुनीतिस् (प्राणयुक्तां (स-  
ताम् ) भक्षण योग्यां तनूं (यथावश) यथा कामं त्व  
कल्पयस्व ।

इयहाँ पर जो अग्निदं ग्ध पद से जीवित पितरों का य-  
हण करें तो उन महाशयों को अवश्य ही द्वितीय अध्याय  
में उक पद की सीमांसा देख कर अपना रान्देह निवृत्त क-  
रना चाहिये ॥

भाषा—हे स्वराट्—दीप्यमान आग्ने ! (ये अग्निदग्धाः) जो हमारे पितर अग्नि में दग्ध हुए इमशान संस्कार को प्राप्त हुए हैं और (येऽनग्निदग्धाः) जो इमशान संस्कार को [ सन्यासी होने के कारण वा किसी अन्य कारण से] नहीं प्राप्त हुए हैं और (दिवोभूष्ये) अन्तरिक्ष लोक में वा स्वर्ग लोक में स्वधा मन्त्र संस्कृत अद्वकी प्राप्ति से जो (मादयन्ते) तृप्त हो कर विचर रहे हैं (तैः पितृभिः) तिन पितरों के प्रति (असुनीतीम्) प्राणयुक्त (एताम्) हवि भक्षणके योग्यता वाली इस (तनूम्) देहकी कल्पना करो जिससे (यथाकायम्) यथेष्ट यहां आकर हवि भक्षण करें । इस वेदमन्त्र के सीधे २ भावार्थसे स्पष्ट सिद्ध है कि स्वर्गादि उत्तम लोकों में जो अत्यन्त पुण्यकर्म से गये हैं वे हमारे पितर अग्निदेव की कृपा एव सहायतासे सूक्ष्म शोभन देह धारण करके यथेष्ट यहां हमारे पितृयज्ञ (आद्व) में आकर हवि भक्षण करते हैं । इसलिये नीचे लिखे वेदमन्त्रों से पुण्यबान् समर्थ पितरों को यज्ञमें यहां युलाने के लिये तथा मध्यम यानी साधारण पुण्यकर्म से मनुष्ययोनिमें प्राप्त एवं (निकृष्ट) पापकर्मनिशार पशुपक्षीशादि योनिमें प्राप्त असमर्थ पितरोंको बहांही उसी योनिमें तृप्त करनेके लिये वा उन्होंकी उच्चगति करने के लिये आद्वकर्म में अग्निदेव की प्रार्थना पूर्वक स्थापना करके उस मे आहुती दी

जाती हैं अर्थात् अनौकरण ( अग्यारी वा होम )  
कराया जाता है । सो यथा—

**उशन्तस्त्वानिधीमहुशन्तः  
समिधीमहि । उशन्तुश्वत आवह  
पितृन्हविषे अत्तवे ॥ ७० । यजु०**

ऋष्या० १८ ॥ ७० ॥

मन्त्रार्थ—( उशन्तः त्वां निधीमहि ) हे अग्ने !  
तुम्हारी इच्छा करते हुए हम तुमको स्थापन करते  
हैं ( उशन्तः समिधीमहि ) यज्ञ की इच्छा से तुम  
को प्रज्वलित करते हैं ( उशन्, उशतः पितृन्, ह-  
विषे, अत्तवे, आवह ) चाहते हुए तुम, हवि चा-  
हने वाले हमारे पितरों को इस यज्ञ में हवि भक्षण  
करने के लिये बुलान्ते ॥ ७० ॥ श्री—

**ये चैह पितरो येचनेहं यां  
पूच्च विद्ध याँरा उच्चन प्रविद्ध ।  
त्वं वैत्य यतिते जातवेदः स्व-  
धाभिद्यज्ञश्चुं सुकृतज्ञ षस्व ।६७॥**

यजु० ऋ० १८ ॥ ६७ ॥

जो मेरे पितर इस लोक में हैं अर्थात् साधा-  
रण पुण्य वा निकृष्ट कर्मनुसार मनुष्य वा पशु

पद्यादि योनि में प्राप्त होकर इस पृथ्वीलोक में रहते हैं । और जो पितर इस लोक में नहीं हैं शर्यात् शत्यन्त उत्तम पुण्य से स्वर्गादि उत्तम लोकों में हैं (च, यान्, विद्धः च, यान्, न, प्रविद्मः) और जिन पितरोंको हम जानते हैं, तथा जिन को स्मरण न होने से नहीं जानते हैं, ( जातवेदः, ते, यति, त्वम्, उ, वेत्य, ) हे अग्ने ! वह पितर जितने हैं वे तुम हीं जानते हो ( स्वधाभिः, सुकृतं, जुषस्य ) सो पितृयज्ञ द्वारा उन पितरों के तृप्त्यर्थ श्रेष्ठ अन्न को सेवन करो, ॥ ६७ ॥

यहाँ “इह,, शब्द से जीते पितरों का ग्रहण नहीं होता किन्तु जिन्हों ने कर्मवश इस लोक में देह धारण किया है अन्यथा “ न “प्रविद्म,, इस का शब्दार्थ नहीं घट सकता “विद्म,, शब्द का अर्थ यह है कि जिनको मैं अपना पितर जानता हूं परन्तु कहाँ हूं यह नहीं जानता हूं अथवा जिन को जानता हूं बाप-दादे-परदादे, जिन को नहीं जानता इक्कीस पीढ़ी तक यह तात्पर्य है ॥ तथा-

यस्मै वक्त्यवाहनं त्वजिच्-  
न्मन्यसे रुद्धिम् । तन्मा गीर्भिः श्र-  
वाययन्देवत्राप॑नया युर्जम् ॥६४॥

मजु० अ० १९ ॥ ६४ ॥

हे पितरों को हथ पहुंचाने वाले अग्ने ! तुम भी जिस हवि रूप अन्नको उत्तम जानते हो ( नः,

तं, गीर्भिः, श्रवाण्यं युजम्, देवता, आपनय ) इस  
लिये हमारे उस वयट्कार आदि वाणियों से मुनने  
योग्य उचित हवि को पितृ देवताओं के प्रति सब  
ओरसे पहुंचाओ ॥ ६४ ॥

इत्यादि वेदभन्नों के ज्ञानय से स्पष्ट सिद्ध है  
कि अग्नि देवता भी स्वधारूप अग्नकी आहुतियोंको  
सूक्ष्मरूप से सेजा कर वहाँ पितरों के प्रति पहुंचा  
देता है ॥

समाजी-पण्डित जी महाराज ! यह भी तो  
मुनाओं कि जब यह किसी को भी मालूम नहीं कि  
हमारे पितर स्वर्ग में गये वा नरक में तब उन्होंको  
अग्न वस्त्रादि भेजना क्या विना पते के पुरुष को  
डांक द्वारा वस्तु भेजनेके तुल्य नहीं और ऐसी आ-  
वस्था में उन को भेजने के लिये अग्न वस्त्र ब्राह्मणों  
के हवाले करना और फिर उन की रसीद का न  
पहुंचना क्या यह सन्देह पैदा नहीं करता कि न  
जाने यह माल भेजने वालोंने ही खा लिया हो ?  
इसलिये हमारे पितरों से माल पहुंचने की रसीद  
न मिलनेसे हमें विश्वास कैसे हो कि ठीक २ उन्हों  
को मिला ?

सनातनी-महाशय जी ! यह तो मैं पहिले शास्त्र  
प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध करचुका हूँ कि हमारे मृत पि-  
तर कर्मानुसार चाहे किसी भी उच्च, नीच, योनि  
में वा स्वर्ग नर्कमें क्यों न गये हों तो भी पितृलोक  
के न्यधिष्ठाता घु-रुद्र-आदिति मुतादि पितृदेव

एवं अग्नि देवता भी, अपने घोगबलसे तथा ग्रस्तौ-  
किक सामर्थ्य से उन पितरों को जानकर वहाँ ही  
उन्होंको तृष्ण करते हुए सुखभागी करते हैं। वाक्षी  
रही हम लोगोंको पूरा २ विश्वास हो जानेके लिये  
उन्हों की “रसीद,,। सो यह भी ठीक नहीं क्योंकि  
आद्विका संकल्प करते ही समय रसीद लिखी जाती  
है कि सूष्टिके आरम्भसे वैवस्वतादि अमुक २ मन्त्र-  
न्तर, चतुर्दुर्गी, युग, सवत्सर, तिथि, वार, मुहूर्तादि स-  
मयमें, अमुकदेशमें, अमुक वर्ण, नाम गोत्रादि, वाला  
में पुरुष वा स्त्री अमुक २ गोत्रादि वाले ब्राह्मण को  
अमुक २ पिता मातादि के निमित्त अमुक वस्तु वा  
भोजन वस्त्रादि देता हूँ। वहाँ उस समय वैठे सब म-  
नुष्यों की साक्षी वा गवाही लिखी जाती है। और  
देवता लोग भी उसमें साक्षी लिखे जाते हैं इसी वि-  
चार से मनुजी ने कहा है कि—

मन्यन्तेवैपापकृतो नकश्चित्पश्यतोत्तिनः ।  
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैत्रान्तरपूरुपः ॥

मनु० भा० ८ ॥

पापी लोग मानते हैं कि यहाँ एकान्त में हम  
को पाप करते कोई नहीं देखता, परन्तु यह भूल है  
क्योंकि उन को देवता लोग और अन्तर्यामी ईश्वर  
देखा करता है। जो देवादि पाप के गवाह होते हैं  
वे ही आद्वादि पुण्यकर्म के भी गवाह हो जाते हैं।  
वह रसीद आकाशमण्डलरूप कागज में वाणीरूप  
स्थाही से तथा वायुरूप लेखनी से लिखी जाती है।

जैसे फोनोग्राफ के ल्होटे से आकाशमें बोले हुए शब्द ( राग ) भर जाते हैं वैसे ही आद्वादि के दान की यह संकल्पात्मक रसीद महाकाश में भर जाती है इसीलिये पतञ्जलि मुनि जी ने शब्दों का स्थान आकाश ( आकाशदेशः शब्दः ) को कहा है । आकाश के ही प्रदेशान्तर में स्वर्गादि किसी योनि में आद्वादि दान का सुख सन्तोष प्रसन्नतादि रूप फल जब पितरों को प्राप्त हो जाता है, तब यही पाने वाले के उस रसीद पर हस्ताक्षर होते हैं । और जब आद्व करते ही समय वा करचुकने पर मन वाणी शरीर में वा स्त्री पुत्रादि सब कुठुम्ब में सर्वव्रकुशलता प्रसन्नता आनन्द मंगल दीख पड़े तब यही आद्वफल पाने की हस्ताक्षरी रसीद आगई मान लेना चाहिये अर्थात् जानो उसी आकाश म-एडलस्य रसीद पर दस्तखत हो आये । और यदि अप्रसन्नता अमंगलादि प्रतीत हों तो मानलो कि सफल नहीं हुआ और रसीद पर दस्तखत नहीं किये तथ यजमान तथा आद्वादि भोक्ता ब्राह्मण का शस्त्रमर्यादा से विरुद्ध करना रूप अपराध दोनों वा किसी एक का हो सकता है उस दशामें केवल ब्राह्मण का ही अपराध मान लेना भी इंकतर्फी छिगरी कर देना है । अभिप्राय यह है कि रसीद नाम विश्वास हो जाने का है—यदि विदेश से आई रसीद पर भी विश्वास न हो तो वा सन्देह हो जाय कि अन्य कैसे हस्ताक्षर अन्य भी बना सकता है और फिर पवद्वारा पूढ़ने पर भी उसी की ओर से लिख

सकता है कि हाँ मुझे २० मिलेगये तब विश्वास न हो तो यहाँ की रसीद भी रद्दी जानो और शब्दभ-माण रूप वेदादि शास्त्रों पर जिनका अटल विश्वास है उन को संदिग्धात्मक रसीद की अपेक्षा ( इच्छा वा ज़रूरत ) ही नहीं है । यदि किसी ऐसे निकट-वर्ती अथवा परम मित्र द्वारा कोई वस्तु समाजो मनुष्य अपने जीवित पिता के पास भेजे कि जिस का सर्वांग में पूरा २ विश्वास हो तो वहाँ समाजी कदापि रसीद नहीं मांगेगा और मांगे तो जानो उस घर वा परम मित्र का पूरा २ विश्वास नहीं तब वह घर वा बनावटी भी रसीद पेश कर सकता है । अन्तमें जबतक विश्वास न करो सभी रसीद आदि रद्दी हैं जब विश्वास दृढ़ होगया तब रसीद की आवश्य-कता सनातनधर्मियों को नहीं है । और सर्वशुद्ध स-नातन धर्मावलम्बियों को वेदादि शास्त्रों पर दृढ़ विश्वास है कि इस निम्नदर्शित वेदमन्त्र में अग्नि-देवने हमारे पितरोंको आद्वान्न पहुंचाया । और इसी ही वेदमन्त्र को हमारे पितरों की तरफ से ईश्वर द्वारा आई हुई सज्जी रसीद समझते हैं । और यह भी विश्वास करते हैं कि आद्वा करने से हमारे पितरों की तृप्ति, तथा निःसन्देह सद्गति होती है । और आद्वा करने वाले हम लोगों को भी यथायोग्य धन युच्च-स्वर्गादि सुख प्राप्त होता है—यथा सज्जी र-सीद रूप वेदमन्त्र—

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवा-  
द्गदव्यानि सुरभीणि कृत्वी, प्रादा:  
पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्वि त्वं  
देव—प्रयता हवींषि,,।

ऋू ऋ० ६ च० १८ गण्ड० १० भनु० १ मू० १५ अष्ट० ३ मं० १२  
शुक्रघजु० अ० १८ च० ६६॥ कृ० यजु० का० २ प्र० २६ अनु०  
१२ मं० ५॥

शब्दव्याख्यार्थः—हे शग्ने ! त्वमस्माभिः ( ईडितः )  
स्तुत हव्यानि शस्मदीयानि सुगन्धीनि कृत्वा ( अ-  
वाट् ) शवाक्षीत् प्राप्तवानसि जड्हवा च ( स्वधया )  
पितृमंचेण पितृभ्यः ( प्रादा : ) दत्तवानसि ते च पि-  
तरस्तद् हवि ( अक्षन् ) भक्षितवन्तः, हे जातवेदस्त्व-  
मणि ( प्रयता ) पवित्राणि हवीषि ( अद्वि ) भक्षण ।

भाषा—हे शग्ने ! हम करके स्तुत हुये ( त्वम् )  
आप हमारे दिये हुए हव्य को सुगन्धित कर हवन  
द्वारा स्वीकार किया, और स्वीकार कर फिर ( स्वध-  
या ) पितृप्रिय स्वधा इस मंत्र से हमारे पितरों के प्र-  
ति प्रदान किया है जैसे आप करके दिया हुआ जो  
हवि है उस हवि को ( ते ) वे हमारे पितर भक्षण क-  
रते हैं । हे ( जातवेद् ) दिव्यप्रकाशस्वरूप शग्ने ! ( त्व-  
म् ) आप भी इन शुद्ध हवियों को भक्षण करो और—

“उदीरतासवर उत्परास उन्म-  
ध्यसाः पितरः सोम्यासः । असुं

**यद्युरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु  
पितरो हवेषु ॥** पञ्जुर्वेद वाजसनेऽ अ० १६ मं० ४८ ॥

अन्वयार्थः—अवरेऽस्मन् भूलोकेऽवस्थिताः पितर उदीरतामूर्ध्वं लोकं गच्छन्तु । मध्यमा मध्यमस्था अन्तरिक्षस्थाः पितरः उदीरतां परासः परलोकेद्युलोकेऽवस्थितादेवत्वं प्राप्ताः पितर उदीरतां ततोऽप्यूर्ध्वं ब्रह्मलोकादिपु गच्छन्तु । कीदृशाः पितरः सोम्यासः शान्तिशोलाः सोमपानाहा वा । ये च असुमीयुर्बायुरूपं प्राप्ताः वायुकायाः<sup>१</sup> सूक्ष्मादृश्याः स्थूलविग्रहाः । अवृकाः शत्रुभावरहिताः समदर्शिनः ऋतज्ञाः सत्यज्ञायज्ञावा स्वाध्यायनिष्ठा वा ते नेऽस्मान्हवेषु आह्वानेषु अवन्तु रक्षन्तु इति प्रार्थयामः ॥

भाषा—(अवरे) इस भूलोक में रहने वाले पितर लोग (उदीरताम्) जपेरी स्वर्गलोक को प्राप्त हों (सोम्यासः) शान्तिशील चन्द्रलोक वासी वा यज्ञों में सोमपान करने वाले (मध्यमाः) मध्य-शन्तरिक्ष लोकस्थ पितर (उदीरताम्) ऊर्ध्वर्गति को प्राप्त हो और (परासः, उत्) \* स्वर्गलोकस्थ

\* स्वर्गांदि लोकों में रहने वाले पितरों का शरीर वायुकाय सूक्ष्म आदृश्य होता है यह बात उपरोक्त “असुम् य इयुः” इस वेद वाक्यार्थ से स्पष्ट सिद्ध है कि जिन्होने केवल प्राणमात्र को ही धारण किया है । यहां स्थूल शरीर का स्पष्ट नियेध है ॥

पितर उससे भी ऊपर महर्लोकादि को प्राप्त हों-  
वे पितर कैसे हैं कि ( असुं य ईयुः ) जिन्होंने प्रा-  
णमात्र को धारण किया है अर्थात् वायुकाय सूक्ष्म  
अदृश्य शरीर वाले स्थूल मनुष्यादि कासा शरीर  
जिन का नहीं है । ( अवृकाः ) जिन का योई शब्द  
नहीं ( ज्ञतज्ञाः ) जो सत्य को वा यज्ञ को जानने  
वाले हैं ( ते, पितरः ) वे पितर लोग ( नः ) ह-  
मारी ( हवेषु ) आद्वादि में आवाहनके सभय ( अ-  
वन्तु ) रक्षा करें यह हमारी प्रार्थना है ॥

प्रिय महाशय जी ! इन दो मन्त्रों से स्पष्ट  
चिद्र है कि शग्नि देवता आद्वकर्म में निमन्त्रित  
ब्राह्मणोंके मन्त्रोद्भारणसे दी हुई पितरों के निमित्त  
आहुतियों को हमारे पितरों के प्रति वहां पहुंचाके  
आया, और उन हमारे पितरों की क्रमपूर्वक ऊपर  
स्वर्गादि लोकों में गति होना एवं स्वर्गादि लोकों  
में रहने वाले हमारे सामर्यवान् पितर आद्व से  
तृप्त हो कर हमारी रक्षा करना इत्यादि सब  
बातों का विश्वास कराने वाली सज्जी साक्षीरूप  
“रसीद” जब हम को परब्रह्म द्वारा वेदादि शास्त्रों  
में लिखी मिली है तब हम को संसारी काग़जी  
रसीद की कौनसी आवश्यकता है अर्थात् संसारी  
कागज के रसीद की उन नास्तिकों को आवश्य-  
कता है कि जिन्होंका हमारे वेदादि धर्मशास्त्रों पर  
विश्वास नहीं । इस लिये कहा है कि “नास्तिको  
वेदनिन्दकः” जिन्हों का वेदशास्त्रों पर विश्वास

नहीं अर्थात् जो वेद की निनदा करते हैं वे ही मनुष्य नास्तिक कहाते हैं इसलिये हम लोगोंको चाहिये कि वेद से दिखाये गये शुद्ध आद्व को विधिपूर्वक करके अपने मृत पितरोंकी सद्गति करें और वेद की आज्ञाको पालन करके अपने हिन्दू मनुष्यत्व को सार्थक करें। यही मेरी प्रार्थना है ॥

समाजी—श्री परिण्डत जी महाराज ! यह तो बहुत अच्छी न्यायरूप सत्य दलील एवं वेद मन्त्रों के भवल प्रभाण से ठीक २ विश्वास दायक “रसीद” दिखलाई । अब मुझे दूढ़ विश्वास हुआ लेकिन एक बात और पूछने की है सो यह कि मृतप्राणी अपने किये पाप-पुण्य कर्मों के अनुसार यदि वह पशु, पक्षी वा यक्ष, राक्षस, पिशाच अथवा देवता हो जाय तो फिर आद्वकर्म में हमारा दिया हुआ क्षीर, घी, हलुआ, लड्डू, पकवान कचौड़ी वगैरः पदार्थ उन्होंको कैसे देहानुकूल रचिकर ( ग्रिय ) होंगे ? अर्थात् पशुओं को घास, मिठाओं को मांस, राक्षस-पिशाचों को रुधिर और मांस एवं देवताओं को अ-मृत वगैरः जब अपने २ शरीरों के अनुकूल ग्रिय हैं तब हमारे दिये हुए उक्त लड्डू कचौड़ी आदि पूरी पकवानों से उन्हों की कैसे रुचिपूर्वक तृप्ति होगी ? अर्थात् मेरा दिया हुआ सब उन्होंके प्रतिकूल होने से बृद्धा हो जायगा ? ॥

सनातनी—महाशय जी ! घबराओ भत कुछ अपनी भी अकूल वा बुद्धि काममें लाओ केवल मग्न

करने ही पर सवार न हो जाओ ? महाश्य जी कुनो जब कि हमारी अंग्रेज सरकार के राज्यमें भी ऐसा अन्धेर नहीं है कि जब हम लोग, जर्मन-फ्रान्स वा जापान, रशिया वगैरः विलायतोंमें गये हुए अपने मित्र को यदि कुछ रूपया भेज देना चाहें तो क्या ये ही हमारे एक तोलेके बजन वाले विकटोरिया वा एडवर्ड अथवा शहनशाह जार्ज दी फिफ्थ के मुहर (प्रतिमा) वाले रूपये वा नोट वगैरह जो यहां पोस्ट आफिस में मनीश्वार्डर करके दिये जाते हैं वो क्या वहां उक्त विलायतोंमें भी हूबहू उसही मुद्र वाले रूपये वा उस ही नम्बर वाले नोट हमारे मित्रको मिलेंगे वा उक्त रूपये नोट वहां अन्य बादशाहत होनेके कारण उपयोगी हो सकेंगे ? नहीं कदापि नहीं । क्योंकि जैसा २ देश और जैसी २ राज्य-सत्तां होती है उस के ही अनुकूल रवाज व हुक्म मूलिक उसी ही मिक्के व मुहर के गिनी वा पाउन्ड वगैरह रूपमें हमारे मित्रको मिल जायेंगे और उपयोगी भी बन सकेंगे तो इसी ही रीति से परम्परा के अनुसूत राज्य में पिन्टूलोक के अभिषुल्त वस्वादि पितर यहां आद्वामें पोस्टमास्टर रूप ब्राह्मणों के मार्फत हमारे पितरों के निमित्त दिये हुए लड्डू-पूरी-कचौरी वगैरह आद्वीय पदार्थ के सारांश को ग्रहण करके हमारे मृतपितरोंके भ्रति चाहे वे किसी भी योनि में पशु, पक्षी, राक्षस, देवतादि

क्यों न हुए हों तो उसी ही योन्यन्तर्गत देहके अ-  
नुकूल करके दे देते हैं। इसलिये हमारे ( प्राप्त )  
यानी पूर्ण धर्मात्मा पूर्ण विद्वान् ऋषि-मुनियों ने  
कलिकाल में नास्तिकों द्वारा उठने वाले से से नि-  
कम्मे खोटे २ सवालोंको निर्मूल करनेके लिये और  
आस्तिक जनों को ज्यादा २ सन्तोष वा विश्वास  
दिलाने के लिये महाभारतादि धर्म इतिहासों में  
स्पष्ट करके लिखदिये हैं कि—

देवोयदिपितोजातः शुभकर्मानुयोगतः ।  
तस्यान्नममृतंभवा देवत्वेऽप्यनुगच्छति ॥१॥  
गान्धर्वेभोग्यरूपेण पशुत्वेचतुणंभवेत् ।  
श्राद्धाक्षंवायुरुपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति ॥२॥  
पानंभवतियक्षत्वे राक्षसत्वेतथाऽमिषम् ।  
दानवत्वेतथामांसं प्रेतत्वेरुधिरोदकम् ॥३॥  
मनुष्यत्वेऽन्नपानादि नानाभोगरसोभवेत् ॥

महाभारत—श्रीदेवल मुनीश्वर के वचन ॥

अर्थात् यदि मनुष्य शुभकर्मानुसार मरकर  
देवता बनेगा तो उस को वह आङ्ग का अङ्ग अमृत  
रूप में—प्राप्त होता है, एवं गन्धर्व जाति में भो-  
ग्य रूप से, पशुयोनि में (तृण) घास रूप से, नाग-  
योनि में वायुरुप से, यक्षयोनि में मदिरा रूप से,  
राक्षसयोनि में—आमिष रूपसे, दानवयोनि में मांस  
रूप से, प्रेतयोनि में रुधिर रूपसे और मनुष्ययोनि  
में अङ्ग पानादि रूपसे वह श्राद्धान्न प्राप्त होता है।  
इसलिये हम लोगों का जो सात्त्विक शुद्ध पवित्र

अन्न घृत-दुर्घादि प्रिय पदार्थ हैं वे ही आद्वकर्म में सुपात्र ब्राह्मणों के मार्फत मृतपितरों के निमित्त देना चाहिये इसलिये—शास्त्र में कहा है कि—‘यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः,—अर्थात् जिस पुरुषकी जो स्वाभाविक खुराक है वही देवताओं के प्रति भी अर्पण करे ॥

तात्पर्य यह है कि हम मनुष्यमात्र की शुद्ध सात्त्विक अन्न, घृत, दुर्घ, फल फूलादि खुराकसे ही आद्वादि शुभ कर्मों में पितृ-देवों की पूजा करनी चाहिये और उस हमारे दिये हुए पदार्थों को सूक्ष्म रूप में लेजा कर पितृदेव हमारे पितरोंके प्रति यादेहानुकूल करके तृप्त करते हैं और हम लोगों को भी आशीर्वाद देकर आनन्द सुखका भागी करते हैं ॥ ॐ तत्त्वदिति शत् ॥

---

इति श्री आद्वपितृमीमांसायां मृतपितृभ्यो  
भोजन-प्राप्त्यर्थं शास्त्रोक्तं मार्गप्रद-  
र्शने चतुर्धोऽध्यायः ॥

---

\* हम मनुष्यमात्रकी स्वाभाविक यही अन्न-घृत-दुर्घ-फल फूलादि सात्त्विक शुद्ध पवित्र खुराक है । और यह न समझना चाहिये कि—जो मरसाहारी मनुष्य हैं वे जासु वगीरह देयतायोके प्रति अर्पण करें—नहीं नहीं, कदापि नहीं ॥ हम मनुष्यमात्र की स्वाभाविक खुराक जासु वगीरह कदापि नहीं है देखो मेरा यनाया हुआ “मासिभृत्यनिषेध” नामक ट्रैक्ट कि जिस में शूष्म विचार पूर्वक यह सिंह किमा गवा है कि मनुष्यमात्र की स्वाभाविक खुराक अन्न है ॥

## अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

समाजी—श्रीपरिषदत जी महाराज ! अब कृपा करके यह बताओ कि पितृलोक इस मनुष्यलोक से भिन्न कोई अन्य लोक है क्या और वह कहाँ स्थित है ? तथा उस लोक के अधिष्ठातृ पितृदेवों का शरीर कैसा है और उनका राजा कौन है ? तथा हे महाराज ! दयापाल ! यह भी बताइये कि हम मनुष्य भाव को इन पितृलोक निवासी पितृदेवों के पूजन सत्कार ( आद्व-तर्पण ) करने की क्या आवश्यकता है ? अर्थात् आद्व तर्पण न करने से क्या कोई दोष वा हानि है ?

सनातनी—महाशय जी ! ये आप के प्रश्न यथा-र्थ और ठीक २ हैं । अब आप आद्वापूर्वक क्रमसे इन प्रश्नों का वेदादि सच्चास्तप्रभाणों से एवं प्रबल मुक्तियुक्त समाधान अवलं करो ॥

यथा—प्रथम आप का प्रश्न यह है कि पितृलोक मनुष्यलोक से भिन्न कोई अन्यलोक है और वह कहाँ है ? सो हे महाशय जी देखो शतपथ ब्राह्मण में सप्तरूप से दिखलाया गया है कि—पितृलोक एक स्वतन्त्र लोक है । जैसे कि—

अथ ब्रयोयावल्लोका मनुष्यलोकः पितृ-  
लोको देवलोक इति । शत० ब्रा० १४ । ३ । २४ ॥  
अर्थात् तीन भोग भूमियें हैं—मनुष्यलोक, पि-

तृलोक और देवलोक । इनमें जीव कर्मानुसार प्राप्त होता है । और केवल निषिद्ध कर्मों का कर्त्ता जीव नरक को ही प्राप्त होता है । इससे सिद्ध हुआ कि पितृलोक, मनुष्य और देवलोकों से जुदा एक स्वतन्त्र लोक है । तथा च—

“दक्षिणाप्रवणोवै पितृलोकः” शतपथब्रा० १३।८।४॥

“कर्मणापितृलोकः” वृहदारण्यक ।

दक्षिण दिशमें पितृलोक है । शुभकर्मों करके पितृलोक में वास होता है । यथा—

तेवाएत आहुतीहुते उत्क्रामतस्ते अन्त-  
रिक्षमाविशतस्ते अन्तरिक्षमेवाहवनीयं कुर्वाते  
इत्यादि ॥ शतपथ ब्रा० ११।६।२।६॥  
तथा—अथ ये यज्ञेन दानेन तपसालोकं जयन्ति  
ते धूममभिसमर्चन्ति, धूमाद्रात्रिं रात्रेपक्षीय-  
माण पक्षमपरपक्षान्यान् पणमासानदक्षिणादि-  
त्य एति मासेभ्यः पितृलोकमित्यादि ॥ शतपथ-

शर्यात्—मरण समयमें इस प्राणीकी तीन गति  
होती हैं, देवलोक पितृलोक, अधोलोक, उसमें पि-  
तृलोक का गमन कहते हैं कि—यज्ञ दानादि कर्म  
करने वाले मनुष्य धूप से रात्रि में कृष्णपक्ष, उस से  
दक्षिणायन और वहाँ से पितृलोक को गमन करते  
हैं । और जो सत्कर्म नहीं वे कीटादि योनि को  
प्राप्त होते हैं । इस से स्पष्ट सिद्ध हुआ कि पितृ-

यज्ञादि शुभ कर्म करने वाले पितृलोकादि उत्तम लोकोंमें जाते हैं। और पितृलोक एक स्वतन्त्र चिरकाल आनन्दप्रद लोक है। यथा—

(स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः०)

तैत्तिरीयोपनिषद् ॥

सो यह पितृलोक (विधूर्धर्वभागे पितरो वसन्ति) [ सिद्धान्तशिरोमणी ]

चन्द्रलोक के भी ऊपर है जहां पितरोंका निवास है। तथा—

उदन्वतीद्यौरवभापीलुमतीति  
मध्यमा । तृतीया ह प्रद्यौरिति  
यस्यां पितृरासते ।

अथर्व वेद का० १८ अनु० २ मा० ॥ ४८ ॥

इस मन्त्रका सम्पूर्ण भावार्थ आगे द्वितीय अध्याय में स्पष्ट करदिया है वहां ध्यान देकर पढ़ेंगे तो अच्छी तरह ज्ञान होगा कि “प्रद्यौ” नाम वाले आकाश के तीसरे भाग में पितृलोक है जहां पितर देव रहते हैं ॥

अब ज्ञापका द्वितीय प्रश्न है कि पितृलोक निवासी पितरों का शरीर कैसा होता है और उन्होंका राजा कौन है ?

सो हे महाशय जी ! इन पितृलोक निवासियोंका शरीर वायुतत्व प्रधान है। यथा—

## आप्यतेजसवायव्यानि लो- कान्तरे शरीराणि । अथर्व० ३। १। २। २८॥

अर्थात्—जलतत्व, तेजतत्व अथवा वायुतत्वप्रधान शरीर बनकर, जीव लोकान्तरों को जाता है ; पार्षिवतत्व (पाञ्चभौतिक पृथिवीतत्वप्रधान स्थूल) शरीर से नहीं जाता है । इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि जीव वायु आदि तत्वप्रधान शरीर धारण करके पितृ आदि लोकान्तरों में जाता है इससे वहाँ के निवासियों का शरीर अवश्य ही वायु आदि तत्व प्रधान है । अर्थात् वायु कायरूप वे पितर हैं । और वायु इन चर्मचक्षु यानी सांसारिक नेत्रों से देखने में नहीं आता है इसलिये ये पितर वायुतत्वप्रधान सूहम शरीरधारी होने से हरएक मनुष्य को देखने में नहीं आते हैं इसलिये वेदमें स्पष्ट दरणाया है कि—  
 तिरङ्गवै पितरो मनुष्येभ्यः०—शतपथ० २। ३। ४। २१॥

सूहम होने के कारण वा यदेच्छाचारी होनेके कारण पितर मनुष्यों से अदृश्य छिपे से होते हैं । इस से सिद्ध हुआ कि जो सूहम अदृश्य हैं जो सर्व साधारण मनुष्यों के दृष्टिगोचर नहीं होते वे पितर अदृश्य ही सूहम शरीरी वायुकायरूप होने से अदृश्य हैं परन्तु पूर्ण शुद्ध—पूर्ण अद्वा भक्तियुक्त, पूणध-  
 ार्मी भास्त्रिक मनुष्यको वे पितर सा-

सात् भी दीख पड़ते हैं और दर्शन \* देते हैं। इस लिये उक्त श्रुति में “द्रव” शब्द कहा है। यही वायुकाय सूदम देहधारो पितृदेव आद्वकर्मसे आवाहन मन्त्रों से [ तत् पितृलोकाऽजीवलोकं अभ्यायन्ति ]  
शुतपेय ब्राह्मण का १३ प० ४ का ६ ॥

\* एकवार श्रीमर्यादापुरुषोत्तम ( परमात्मा के पूर्णावतार ) श्रीरामचन्द्रजी भहाराज ने घन में विता श्री दशरथ जीका एकोद्दिष्ट आदृ किया—यह कथा बड़ी मनोहर है—आदृसमय में आदृभोक्ता मुनियों के देह में श्रीजानकी जी ( सीताजी ) ने अपने श्वशुर दशरथजीके दर्शन किये ।

### श्री वाल्मीकीयरामायणे—

भयासुचलितेसूर्ये कालेकुतुपकेतथा ।

आयाताक्षरपयस्सर्वे ये रामेण निमन्त्रिताः ॥ १ ॥

तानागतान्मुनीन्दृष्टा वैदेहीन्नकात्मजा ।

अपासर्पततोदूरे विप्राणां भृथतःस्थिता ॥ २ ॥

अन्यत्र च गुतासाध्वी मन्येचाहंत्रपान्विता ।

किन्तावद्वौजयेविप्रान् सीतामन्येपयामिकिम् ॥ ३ ॥

गतेयुद्धिष्ठमुख्येयु प्रियारामो ब्रवीदिदम् ।

किमर्थंसुभ्रुतष्टासि मुनीन्दृष्टा समागतान् ॥ ४ ॥

एवमुक्तातदाभर्त्रा त्रपयाधीमुखीतथा ।

मुख्यन्तीचाशुसहृतं राघवं वाक्यमवृतीत् ॥ ५ ॥

पितातवमयादृष्टो द्रास्त्रणाद्वैपु राघव ! ।

दृष्टात्रपान्वितावाहमपकान्तातवान्तिकात् ॥ ६ ॥

याहंराज्ञापुरादृष्टा शर्वालङ्कारभूपिता ।

सा स्वेदगलदिग्धाङ्गी कथं पश्यामि भूमिपम् ॥ ७ ॥

स्यहस्तेन कथं राज्ञे वानेयं भोजनं त्विदम् ।

दासानामवियद्वासा नोपमुञ्जन्ति कहिंचित् ॥ ८ ॥

पितॄलोक से जीवलोक अर्थात् मनुष्यलोक में  
आते हैं। इसलिये वेदमें आज्ञा है कि—

**भावार्थ**—कुतुपकाल (अपराह्न) में जब श्रीरामचन्द्र जी आदु करने लगे तो जिन २ ऋषियों को निमन्त्रण दे आये थे वह सब मुनिमण्डली आगयी, उन्हें आता हुआ देखकर जानकी जी उठकर भागगई और दूर जाकर लता पताओं में अपने को छिपालिया। तब श्रीरघुनाथ जी को बड़ा आश्वर्य हुआ कि आज जानकी जीने मुनियों से क्यों परदा किया। अब मुझे क्या कर्त्तव्य है, जानकीको ढूँढ़ूं या मुनियोंको भोजन कराऊं। अन्त में यही स्थिर किया कि आदुकाल का लोप न होवे। पिण्डदान करके ब्रह्मभोज पूर्ण किया—आशीर्वाद देती हुई सब ऋषिमण्डली चलीगई। उन सब के बिदा होते ही जानकी जी आगयीं, तब श्रीराम-चन्द्र जी कहने लगे कि हे प्रिये! तुम कहाँ गईं यीं तुमने ऋषियोंका बड़ा अनादर किया और न उनको प्रणाम किया इतना सुनकर लज्जायमान जानकी नीचेकी मुख्यकर रोती हुईं बोली कि हे नाय! ब्राह्मणोंके अद्भुतमेंमहाराज श्रीदशरथजीको देखकर मैं लज्जावश हो लताज्ञीमें जा छिपी क्योंकि जिन श्वसुर जी ने सर्व अलंकारों से भूषित मुझे देखा था आज उन के सामने जटा और वल्कल धारण करे कैसे इस चेष्ट को दिखाऊंगी इसी से उस समय छिप जाना ही उत्तम था। दूसरा—यह (वानेय) वनका भोजन अपने हाथ से कैसे परोसूंगी—जिन महाराजको पूर्ण यद्रस परोसती थी

इस कथासे सिद्ध होता है कि आदुभोक्ता ब्राह्मणोंके साथ पितर सूक्ष्मरूप में आते हैं श्रीर श्रीसती जानकी जी जैसी पूर्ण पतिव्रतायें पा पूर्ण धर्मात्मा नजुप्य ही उन पितरोंके द्वारा या सकते हैं॥

उभे दिशावन्तरे विदधाति प्राचीं च दक्षि-  
णां चैतस्याथं ह दिशि पितृलोकस्य द्वारं द्वारे-  
वैनं पितृलोकं प्रपादयति ॥ शतपथ० ब्रा० १३।४। ४४॥

ग्राम नगरादि से पूर्व और, दक्षिण दिशा के  
बीच आग्नेयकोण में चतुष्कोण वेदी ( शमशान म-  
न्दिर ) बनावे, क्योंकि इसी आग्नेय दिशामें पितृ-  
लोक का द्वार है । ऐसा शमशान बनाने वाले अपने  
मृतक को द्वारके मार्ग से पितृलोक को यहुंचाते हैं ॥

इत्यादि से स्पष्ट विदित हुआ कि पितृलोक एक  
स्वतन्त्र लोक है और वह दक्षिण में है—उनका द्वार  
आग्नेयकोण में से है । वहां अत्यन्त पुण्यवान् जीव  
जा सकते हैं तथा उन के निवासी पितृदेवोंका श-  
रीर वायुकाय रूप सूदम है । पूर्णधर्मत्वा—अद्वायुक्त  
सत्यवादी मनुष्योंको ही उन पितृदेवोंका दर्शन होता  
है । और वे ही वेदके शावाहन मन्त्रों से निमन्त्रित  
ब्राह्मणों के शरीर में प्रदृश्य रूप से यहां आद्वकमंमें  
आते हैं । परन्तु दिव्य चक्षु वाले ही उनका दर्शन  
कर सकते हैं । इति ॥

हे महाशय जी ! अब आप यह भी सुनो कि  
उन पितृदेवों का राजा ( स्वासी—अधिष्ठाता )  
कौन है ॥ यथा—

**ये समानाः समनसः पितरो  
यमराजय० । यजुर्वेद वाजस्नेय अ० १९ म० ४५॥**

पितृलोक का राजा यमराज है । अर्थात् जो जाति तथा रूपादि करके तुल्य एकसे अन्तःकरणों वाले पितर यम देवता के राज्यमें रहते हैं । तथा—

यो भग्नार प्रथमो मत्त्यर्णां  
यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् । वै-  
वस्वतं संगमनं जनानां यमं रा-  
जानं हविषा सपर्यत ॥

अथर्वा कां० १८ । अनु० ३ भं० १३ ॥

अर्थ—सृष्टि के आरम्भ में जो मनुष्यों के बीच सबसे पहिले मरता है, और मरणानन्तर जो इस पितृलोक में पहिले जाता है पीछे अन्य मनुष्य मरने के जिस के अधिकार में जाया करते हैं इस कारण वह जनों का “संगमन” कहाता है [ सम्यग्गच्छन्ति जना यस्मिन् यत्सन्निधौ स सङ्गमनस्तम् ] उस विवस्वान् के पुत्र “यमराज” का है मनुष्यो ! हविर् यज्ञ द्वारा पूजन करो । जैसे पितर सनातन हैं अर्थात् मनुष्यों के समान योड़े २ कालमें उन का जन्म मरण नहीं होता वैसे पितरों का वा मर्फ़र पुण्यकर्मों से पितृलोक में जाने वालों का राजा यम भी पितृलोकमें जाने पश्चात् अस्मदादि की शपेक्षा सनातन यहाते हैं । कभी जिन का नाश न हो ऐसे तो वायु वादि सूदम तत्य भी नहीं हैं क्योंकि प्रलय के

समय वे भी नहीं रहते इस से सापेक्ष नित्य वा सनातन सूक्ष्मतत्वों के तुल्य पितर भी हैं। जैसे मनुष्य का शरीर पृथिवी तत्त्वप्रधान है और स्थूल है वैसे पितॄलोक के राजा यम का और पितरों का शरीर वायुतत्वप्रधान सूक्ष्म है। जैसे मनुष्यदेहोंका अधिष्ठाता एक २ जीवात्मा होता है वैसे पितॄदेहोंके साथ भी एक २ अधिष्ठाता जीव है। इससे स्पष्ट बिछु हुआ कि पितॄलोक का राजा यमराज है। उत्तर—

अपेमंजीवा अरुधन् गृहेभ्य-  
स्तं निर्वहत परिग्रामादितः । मृ-  
त्युर्यमस्यासीद्दूदूतः प्रचेता असून्  
पितॄभ्यो गमयाञ्चकार ॥

अथर्वा का० १८ । २ । २७ ॥

अ०—हे जीवाजीवित जना इमं मृतं देहं  
गृहेभ्यः पृथगपारुधन् निस्सारयत तमितो ग्रा-  
मातपरि—वहिनिर्वहत नयत । प्रचेताः प्रकृष्टवु-  
द्धिर्मृत्युर्यमस्य दूत आसीदस्ति समृतस्यासून्  
पितॄभ्यः पितॄभावाय गमयोञ्चकार गमयति व-  
र्त्तमाने लङ्घिटी ॥

भावार्थः—हे जीवित पुरुषो ! इस मरेहुए मुर्दा शरीर को घर्तोंसे बाहर निकालो और उस को इस

ग्राम से बाहर ले जाओ। यमराज का दूत बड़ा बुद्धिमान् मृत्यु नामक है जो मरे हुओं के प्राणों को पितर बनने के लिये यमलोक अर्थात् पितृलोक में पहुंचाता है। तथा—

**ये नः पितुः पितरो ये पिता-  
महा य आविविषुर्वर्वन्तरिक्षम् ।  
तेभ्यः स्वराङ्गुनीतिनौ अद्य य-  
थावशं तन्वः कल्पयति ॥**

अर्थवृ० कां० १८ । अनु० ३ । मं० ५८ ॥

अर्थ—जो हमारे पिता के पितर पितामहादि ( दादे वगैरह ) तथा प्रपितामहादि कि जो मरणानन्तर महान् अन्तरिक्ष लोकमें प्रवेश करन्तुके हैं उन हमारे पितरों के लिये, प्राणों का ले जाने वाला स्वतन्त्र राजा यम कर्मानुसार उत्तम शरीर देते। इत्यादि वेदमन्त्रों से निःसन्देह सिद्ध हुआ कि पितृलोक का राजा श्रीयमराज है और वही मनुष्यादि प्राणीमात्र की ( मरणानन्तर उत्तम—निकृष्ट कर्मानुसार ) यथायोग्य शरीर देकर सुख दुःखादि भुगाता है। इति ॥

हे महाशय जी ? आव आप के उस संशय का भी समाधान किया जाता है जो कि पितृलोकनिवासी पितरों के पूजन सत्कार ( आद्व—तर्पण ) क-

रने की क्या आवश्यकता है और न करने से क्या हानि वा दोष है ।

समाधान-प्रजापतिं वै भूतान्युपासीदन् प्रजा-  
वै भूतानि विनोधेहि यथा जीवामेति । ततो देवा  
यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदं-  
स्तानब्रवीद् यज्ञो वोऽन्नमृतत्वं व ऊर्क् सूर्यों  
वो ज्योतिरिति ॥१॥ अथैनं पितरः प्राचीनावी-  
तिनः सत्र्यं जान्वाच्योपासीदं स्तानब्रवीद् मा-  
सि मासि वोऽशनं स्वधा वी मनोजब्रश्चन्द्रमा  
वो ज्योतिरिति ॥२॥ अथैनं मनुष्याः प्रावृता उ-  
पसर्थं कृत्वोपासीदं स्तानब्रवीत् साधं प्रातर्वोऽ-  
शनं प्रजावो मृत्युरग्निर्वो ज्योतिरिति ॥३॥

यजु० शन० का० २ प० ३ ब्रा० ४ ॥

**भाषा भावार्थः-** सृष्टि के आरम्भ में देवता तथा  
पितर और मनुष्य ये तीन प्रकार के भूत ( जिस  
प्रकार से हमारा जीवन-सत्कार-पूजन हो सो प्र-  
कार हमारा विधान करें ) इस कथन के अभिप्राय  
से प्रजापति ( ब्रह्मा ) के समीप गये, वहाँ प्रथम दे-  
वताओं ने यज्ञोपवीत को धारण कर दक्षिणजानु  
का भूमि पर पात कर ब्रह्माजीके सन्मुख उपस्थित  
होकर जीविका एवं सन्मान होने की धाचना की  
तब प्रजापति ने यह कहा कि यज्ञ आप का आज्ञ है  
अमृत आपका ऊर्क् ( चीर्यग्रद ) है और सूर्य आप  
के स्त्रिये प्रकाश है ॥ १ ॥

फिर पश्चात्-प्राचीनावीति ( अपसव्य यानी यज्ञोपवीत वायें तरफ करते ) हुए वांया ( जानु ) घोंटू पृष्ठवी पर नवाय कर पितर सोग उपस्थित हुए, तब उन पितरों के प्रति प्रजापतिने यह कहा कि महीने २ भरमें १ \* एकवार अमावास्याके दिन आप का भोजन होगा । तुम्हारे लिये कर्मकारडमें “स्वधा” शब्द बोला जायगा । वह स्वधा पदवाच्य वस्तु तुम्हारे लिये मनके तुल्य वेग वाला होगा । और चन्द्रमा तुम्हारा ज्योति अर्थात् तुमको प्रकाश पहुंचाने वाला होगा ॥ २ ॥

फिर प्रावृत “निवीतं कण्ठलस्मितस्” ( अ-

\* यह भी ध्यान में रहे कि मनुष्यके एक महीनेका समय पितरों का एक दिन-रात सब शास्त्रोंमें जाना गया है । इस लिये कृष्णपक्षरूप रात्रि की सनाति में प्रातः काल अमावास्या को पितरोंको अपने दिन के हिसाब से नित्य भोजन मिला और मानुष दिन के हिसाब से महीने २ में भोजन मिलना कहा गया है तथा उक्त कथन से यह भी आया कि अपसव्य रहने वाले एव वांया घोंटू टेक के बैठने वाले और महीने २ में अमावास्या को एकवार भोजन करने वाले तथा चन्द्रमा जिन का ज्योति है वे पितर हैं । वा जिनका ग्राम पितर है वे उक्त प्रकार से अपसव्यादि रहने वाले हैं । मनुष्य प्रति दिन भोजन करते हैं और पितर महीने २ में एकवार अमावास्या को भोजन करते हैं । इस कारण पितर मनुष्य नहीं अर्थात् मनुष्यों से पृथक् हैं । इस से भी स्थूल देह धारी जीवित पितरों का स्पष्ट रखण्डन है ॥

र्थात् गलेमें सालाकी तरहे येज्ञोपवीत पहिने ) हुए दोनों ( जानुओं ) घोंटुओंको भूमि पर नवाय कर मनुष्य उपस्थित हुए, तब उन से प्रजापर्ति ने यह कहा कि सार्व और प्रातःकाल आपका भोजन होगा और पुत्र-पौत्रादि प्रजा आप लोगों का मृत्यु है और अग्नि आपकी ज्योति यानी प्रकाश है ॥ ३ ॥

इत्यादि वेद की श्रुतियों में स्पष्ट आच्छा दिखायी वा कही गयी है कि हर एक वैदिकधर्मावलम्बी मनुष्यमात्रका यह श्रवण्य कर्त्तव्य है कि ब्रह्मा जी द्वारा नियत किये यज्ञों से देवताओं का, तथा प्रत्येक महीनेकी अमावास्या में पितृयज्ञ ( श्राद्ध ) द्वारा पितरों का पूजन-सत्कार करें जिससे कि वे देवता और पितर अपने अभीष्ट ( यानी मुकर्ति ) पूजन सत्कारको ग्रहण करके सन्तुष्ट होकर ब्रह्माचाकारी मनुष्योंके प्रति सन्तान-धन-धान्य समृद्धि आदि सुख देकर तथा उन्हों के मृतपितरों की भी सद्गति करें वा करते रहें । और जो मनुष्य वेद तथा श्री ब्रह्माजीकी आच्छा उल्लंघन करके वेदोक्त देव-पितृ यज्ञादि कर्म नहीं करता वह ब्रह्माच्छा विरोधी होकर वेदमार्ग से भ्रष्ट होकर अनादर और दुःखको प्राप्त होता है और उन देव पितरोंके कोपद्वारा वह मनुष्य अनर्थ और दोषका भागी होता है । तथा और भी स्पष्टरूप से वेद में दिखलाया गया है कि—

एष \* पन्था एतत्कर्मेतद् ब्रह्म तत् सत्यं  
 तस्माच्च प्रमाद्येत् तस्माच्च प्रमाद्येत्तत्त्वातीयाद्  
 न ह्यत्योयन् पूर्वे येऽत्यायंस्ते परावभूतुः तदुक्त  
 मृषिणा—“प्रजा ह तिस्तोऽत्यायमीयुन्यन्या अ-  
 कर्मभितो विविश्च, वृहद् ह तस्थौ भुवनेष्वन्तः  
 पत्रमानो हरित आविवेश” इति, “प्रजा ह ति-  
 स्तोऽत्यायमीयुरिति” या वै ता इमाः प्र-  
 जास्तिस्तोऽत्यायमायंस्तानीमानि वयांसि व-  
 द्वावगधारचेरपादाः, ‘न्यन्या अर्कमभितो वि-  
 विश्च, इति, ता इमाः प्रजा अर्कमभितो निवि-

\* एतच्छब्दः सन्निहितार्थपरामर्शकः, सन्निहितश्चार्थं  
 उत्तीत आगामीचेत्येव द्विविधः, तथा च ( एष ) उभयवि-  
 धोप्यर्थः ( पन्थाः ) पुरुषार्थस्य मार्गः, साधनमितियावन्,  
 तदुभयं विस्पष्ट निर्दिश्यते ( एतत्कर्म एतद्ब्रह्म ) अग्निमील  
 इत्यारभ्य, ग्रहोरुपम् इत्यन्तेनातीत सन्निहितग्रन्थेन प्रति  
 पादित यत्कर्मेतया उल्लम्-इत्यारभ्य आचार्य इत्यन्तेन स-  
 न्निहितेनारण्यक दृथ रुपेषोक्तर यथेन निरूपित यत्सुगुणं नि-  
 र्गुणं च ब्रह्म एतदुभयमपि पुरुषार्थ साधनं, व्यवहार परमार्थ  
 भेदेनोभयमपिस्त्यम्, शक्तकर्मशब्देन तज्ज्ञानपूर्वकमनुष्ठानं  
 ग्रहणशब्देन च तद्विधयं ज्ञानसात्र शृण्यते, यथोक्तस्योभयवि-  
 धस्य मार्गत्वं द्रढयितुमयोगव्यायात्तिभन्ययोगव्यावृत्ति च  
 विधत्ते ( तस्माच्च प्रमाद्येत् ) कर्मानुष्ठानब्रह्मज्ञानयोरस्तपादनं  
 प्रकादः, तथा सपादयितु प्रवृत्तेनागप्यासस्यादिना तत्परि  
 त्यागोऽवि प्रमादः, एतदुभय न कुर्याद् इति ।

एषा इममेवाग्निं, वृहद् ह तस्थौ भुवनेष्वन्तः  
इति, अद उ एव वृहद् भुवनेष्वन्तरसावादित्यः  
पवमानो हरित आविवेश, इति, वायुरेव पश्च-  
मानो दिशो हरित आविष्टः” ॥

ऋग्वेद-ऐतरेयारथ्यक २ अ० १ ख० १ ॥

**भाषार्थः-**( एतत्कर्म-एतद्ग्रहण ) यह जो पूर्वो-  
त्तर ग्रन्थसे देव-पितृयज्ञादि कर्म और ब्रह्मका नि-  
रूपण किया है ( एष पन्थाः ) यही पुरुषार्थका मार्ग  
है अर्थात् भोग भोक्षका देनेवाला है ( एतत् सत्यम् )  
यही वेदोत्तर कर्म तथा ब्रह्मज्ञान अवश्य फल देनेसे  
सत्य है । और अन्य जो अवैदिक अनुष्ठान हैं वह  
अनर्थ यर्थवसायी हीनेसे मिथ्या हैं ( तस्माद्व प्रमा-  
द्येत् ) तिस अम्नायमार्गसे प्रमाद न करे और ( त-  
ज्ञातीयाद् ) तिस मार्ग का अतिक्रमण भी न करे  
किन्तु आलस्य तथा अन्य कुमार्गको त्यागकर इसी  
का ही अनुसरण करे; इसीसे ही ( नह्यत्यायन् पूर्व )  
जो पूर्व मनु-वसिष्ठ आदि महापुरुष हुए हैं वह इस  
मार्गका अतिक्रमण यानी उल्लंघन नहीं करते रहे  
और ( येऽत्यायन् ) जो नास्तिक लोग इस वेदोत्तर  
मार्गका उल्लंघन करते रहे ( ते परा वभूवः ) वह  
पुरुषार्थसे भ्रष्ट हुए निरादरको प्राप्त हुए हैं ॥

इस ब्राह्मणोत्तर अर्थकी दृढ़ताके लिये मन्त्रवा-  
प्रमाण देते हैं कि ( तदुत्तमृषिणा ) इति, अब इस  
मन्त्र का स्वर्य ही ब्राह्मण व्याख्यान करता है कि  
प्रजा ( प्रजा ह तिस्त्रोऽत्यायमीयः इति, यावै ता

इमाः प्रजास्तिस्तोऽत्यायमांयन् तानीमानि वयांसि  
वज्ञा अवगप्तौश्चेरपादाः ) अर्थात् ब्राह्मणादि भेदसे  
जो अनेक प्रकारकी प्रजा हैं उनमें से तीन भाग जो  
प्रजा हैं वह वैदिक कर्मके उल्लंघन करने वाली हैं  
और एकभाग प्रजा वैदिककर्ममें निष्ठावाली है। वहां  
जिन प्रजाओंने वैदिककर्म का त्योग किया है उन  
प्रजाओंकी गति कहते हैं—( तानीमानि वयांसि )  
अर्थात् जिन्होंने औत यानी देव-पितृ, यज्ञादि कर्म  
का त्याग किया है उनमें से एकभाग तो काक आदि  
पक्षि योनियोंको प्राप्त होते हैं जो कि आकाश में  
विचरने वाले हैं और एक भाग वज्ञ \* ( वृक्ष ) और  
अवगध ( ओषधियें वा वनस्पतियें ) हैं और एक  
भाग ईरपाद हैं अर्थात् पृथिवी के बिलमें निवास क-  
रने वाले पादोदर ( सर्प ) आदि हैं, अर्थात् जिन २  
लोगोंने पूर्वत्ति औतमार्गका त्याग किया है वह मर  
कर नरक भोग के अनन्तर पशुपक्षादि-कीट स्थावर  
आदि अनेक तिर्यग् योनियों को प्राप्त होते हैं।

इस-प्रकार वैदिकमार्गके उल्लंघन करने वाली  
तीन प्रकारकी प्रजाकी व्यवस्था कहकर शब्द एकभाग  
वाली जो आस्तिक प्रजा है उस की गति कहते हैं  
कि “न्यन्याशक्तमभितो विविश्वे” इति ।

\* ( वज्ञः ) यनगता वृक्षः, अवगधः—अवस्ति-रक्षन्ति  
मनुप्यादीन् इति अथा, एच्यन्ते-अभिकाह्यपन्ते जनैरिति  
गथा. भनस्पतिरूपा ब्रीह-यवादि रूपा ओषधय, इत्यर्थः ॥

इसीका विवरण करते हैं ( ता इमाः प्रजा अ-  
क्षमभितो निविष्टा द्रममेवाग्निश्च ) इति, अर्थात् आ-  
स्तिक प्रजामें से कोई एक तो आहवनीय रूप ( अर्क )  
आर्चनीय जो अग्नि है उसकी उपासना करते हैं और  
कोई एक ( वृहद् हतस्थी भुवनेष्वन्तः ) इसीका वि-  
वरण कहते हैं कि ( शद उ एव वृहद् भुवनेष्वन्त  
रसायादित्यः ) इति, अर्थात् यह जो ब्रह्माण्डमें व्या-  
पक तेजोमय मात्र एड़—( सूर्य ) है उसकी उपासना  
करते हैं। और कोई एक [ पवमानो हरित आविवेश ]  
इसका विवरण कहते हैं कि ( वायुरेव पवमानो दिशो  
हरित आविष्ट ) इति, अर्थात् निखिल दिश में सं-  
चारी जो पवित्र रूप वहन शील वायु हैं तिसकी उ-  
पासना करते हैं, अर्थात् समष्टि वायु रूप हिरण्य गर्भ  
की उपासना करते हैं ॥

तात्पर्य यह है कि आस्तिक लोग अग्नि आदि  
की उपासना द्वारा सद्गति को प्राप्त होते हैं और  
नास्तिक लोग पक्षि आदि रूप अधोगति को प्राप्त  
होते हैं ॥

तथा मनु भगवान् एवं योगी श्री योग्यवलक्य  
मुनि ने भी—

अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ।

प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु ग्रायश्चिंत्तीयतेनरः ॥

मनु० अष्ट्या० ११ । ४४ ॥

विहितस्याननुष्टानात्तिन्दितस्य च सेवनात् ।

अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥

या३० अ० ३ । २१६ ॥

अथर्व-विहित ( यानी वेदोक्त देव-पितृय-ज्ञादि ) कर्मके न करने से और निषिद्ध कर्मोंके करने से तथा विषयोंमें अति आसक्त होनेसे पुरुष प्रायश्चित्त का भागी होता है । एवं याज्ञवल्मयजी कहते हैं कि-विहित कर्म के न अनुष्ठानसे और निन्दित ( परस्त्रीगमनादि ) के सेवनसे तथा इन्द्रियोंको न रोकनेसे पुरुष पापको प्राप्त होता है ॥

इत्यादि वेद-स्मृतिशास्त्रोंके ग्रमाणोंसे निस्सन्देह चिद्ध होता है कि मनुष्यमात्र, वेदादिशास्त्रोक्त ग्रौत-स्मात्तं कर्मों के सेवन न करने से पतित होकर अधोगतिको प्राप्त होता है । इसलिये, हरसक वेद-मतानुयायी आस्तिक जनका यह अतीव मुख्य और अवश्य करने योग्य कर्तव्य है कि वह निरालस्य होकर विना शक ठीक २ शास्त्रदर्शित विधिसे देश-काल पात्रका विचार करके आद्वादि ( देवपितृयज्ञ ) करके अपना जीवन सफल करे । और उपरोक्त कर्मकाण्ड का त्वाग करने से निःसन्देह दोषं रुद्धं अत्यन्त हानि होती है ॥ इत्यलम् विद्वन्मु—

इति श्रो श्राद्धपितृमीमांसायां पितृलोकस्थितिस्तस्याऽधिष्ठात्रपितृदेवानां स्वरूपवर्णने चैवं तत्कर्माऽनुष्ठानस्थाऽत्यावश्यकता प्रदर्शने समाप्तोऽयं पञ्चमोऽध्यायः

ॐ—सुचिच्छदानन्देश्वराय नमः ॥

## · अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

सभाजी—श्रीपण्डित जो महाराज ! आब कृपा करके यह भी तो सुनाऊंगो कि श्राद्धमें केवल ब्राह्मणोंको ही निमन्त्रण देकर भोजन करानेकी क्या आवश्यकता है ? यद्यों नहीं उन हमारे मित्र (दोस्त) वा आन्य किसी गरीब अनाथ अथवा अब-नवीन आर्य हुए [मुसलमीन, अब्दुलगफूर वगैरह जिन्हों का आर्य नाम धर्मपालादि रखे गये हैं उन ] महाशयोंको अपने पितरोंके निमित्त श्राद्धमें भोजन करावें ? क्या केवल ब्राह्मणोंको ही इसके लिये किसी महाराजासे इकरारनामा लिखा मिला है वा कोई इनको किसीने सार्टीफिकेट लिखदिया है ?

सनातनी—महाशय जी ? घबराऊंगो मत, ओड़ा धैर्य धारण करो और ध्यान लगाकर सुनो कि ब्राह्मणों के लिये श्रीमहाराजाधिराज महर्षि श्रीमनु भगवान् ने क्याही सुन्दर सार्टीफिकेट रूप में पक्का इकरारनामा लिखदिया है कि जो सब वैदमतानुयायी आस्तिक हिन्दुओंको परम माननीय है ॥

यथा—मनुस्मृ० अध्याय १ श्लोक ८२ से १०१ तक  
ऊर्ध्वंनामेर्मध्यतरः पुरुषपरिकीर्तिः ।  
तस्मान्मेध्यतमंत्वस्यमुखमुक्तंस्वयंभुवा ॥६३॥

उत्तमाद्वाद्वाऽज्यैष्या ह ब्राह्मणश्चैव धारणात् ।  
 सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥६३॥  
 तं हि स्वयं भूः स्वादौ स्यात्तपस्तप्त्वा दितोऽसृजत् ।  
 हृष्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये ॥६४॥  
 यस्यास्येन सदा मन्त्रन्ति हव्यानि त्रिदिवीकसः ।  
 कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः ॥ ६५ ॥  
 भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।  
 बुद्धिमत्सुनराः श्रेष्ठा न रेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥६६॥  
 ब्राह्मणे पुच्छविद्वांसो विद्वत्सुकृतयुद्धयः ।  
 कृतयुद्धिपुकर्त्तारः कर्तृपुब्रह्मवेदिनः ॥ ६७ ॥  
 उत्पत्तिरेव विग्रस्य मूर्त्तिर्धर्मस्य शाश्वती ।  
 सहि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ६८ ॥  
 ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ।  
 ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकीश्वरस्य गुप्तये ॥ ६९ ॥  
 सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगती गतम् ।  
 श्रेष्ठघे नाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ॥ १०० ॥  
 स्वमेव ब्राह्मणो भुद्धके स्वं वस्ते स्वं ददाति च ।  
 आनृशं स्याद्वाह्मणस्य भुञ्जते हीतरेजनाः ॥ १०१ ॥

अर्थात्—श्री ब्रह्माजीने पुरुषोंको नाभिसे ऊपर  
 के भागमें अधिक पवित्र कहा है। और इसके मुख  
 को तो उससे भी पवित्र कहा है ॥ ८२ ॥ ब्राह्मण सब  
 श्रंगों में उत्तम परमात्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है,  
 क्षत्रियादि तीनोंसे पहिले जन्मा है और वेदको मु-

खाग्र रखता है—इस कारण ब्राह्मण धर्म का उपदेश करनेमें इस सब सृष्टिका गुरु ( शासक ) है ॥ ८३ ॥ स्वयम्भू ब्रह्माने तप करके देवताओंको ‘हव्य, और पितरोंको ‘कव्य, पहुंचानेके लिये तथा इस सब जगत्की [ यज्ञादिके द्वारा वर्षा आदिसे ]’ रक्षा करने के लिये आरम्भमें अपने मुखसे ब्राह्मणोंको रखा है ॥ ८४ ॥ जिसके मुखसे देवता हव्योंको और पितर-कव्योंको सदा खाते हैं, तिससे बढ़कर कौनसा प्राणी हो सकता है ? ॥ ८५ ॥ पृथिव्यादि पञ्चभूतोंसे बनाये स्थावर जंगम सब प्राणियोंमें कीट पतंगादि प्राणी श्रेष्ठ हैं कदाचित् किञ्चित् सुखलेश के प्राप्त होने से और उनसे ( बुद्धिजीवी ) सार्थ निरर्यक स्थानमें जाने न जाने वाले पशु आदि श्रेष्ठ हैं—उनसे प्रकृष्ट ज्ञान के सम्बन्धसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं—उनसे भी सर्वपूज्य और मोक्षाधिकारके योग्य होनेसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ॥ ८६ ॥ ब्राह्मणोंमें भी स्वर्गादि फल देनेवाले उपोतिष्ठोमादि कर्मकारणके विद्वान् अधिकारी श्रेष्ठ हैं—उनसे अनागत के लिये प्रथम स्तकर्म करने वाले श्रेष्ठ हैं—उनसे भी हिताहित प्राप्ति परिहार भागी होनेसे ( कत्ता ) अनुमुता श्रेष्ठ हैं—उन से भी भोक्षफलके साभयोग्य होनेसे ब्रह्मवादी श्रेष्ठ होते हैं ॥ ८७ ॥ ब्राह्मणका देह जन्म मात्रसे ही अविनाशी धर्मकी मूल्ति है जिस से वह धर्मके लिये उर्पन्न हुआ है । धर्मानुगृहीत आत्मज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति के लिये योग्य है ॥ ८८ ॥

जिससे ब्राह्मण उत्पन्न होता हुआ ही पृथिवीमें (श्रधि) जंचा और श्रेष्ठ है। सर्व धर्मोंको ब्राह्मणद्वारा उप-देश किये जानेसे तथा सब जीवोंके धर्मके समूह की रक्षाके लिये समर्थ है ॥ ८८ ॥ जो कुछ पृथिवी में धनादि पदार्थ हैं वह सब ब्राह्मणका अपना स्वत्व है यह बात ब्राह्मणकी स्तुतिके लिये कही है—तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण के अपने स्वत्व के तुल्य है इस से ब्राह्मण ब्रह्माजीके मुख से उत्पन्न होने, और वंश से श्रेष्ठ होनेसे सर्व पदार्थों और द्रव्योंके ग्रहणके योग्य है ॥ १०० ॥ ब्राह्मण जो दूसरेका भी अन्न भक्षण करता है सो अपना ही करता है, दूसरे का जो वस्त्र पह-रता है और जो दूसरेका पदार्थ लेकर औरके अर्द्ध देता है वह भी ब्राह्मणका अपना ही पदार्थ है ऐसा होनेसे ब्राह्मणकी कृपा ही से और सब लोग भोज-नादि करते भोगते हैं ॥ १०१ ॥

**इत्यादि श्री महाराजाऽधिराज महर्षि श्रीभनु**  
**भगवान्‌ने ब्राह्मणोंकी प्रशंसा करते हुए देवता और**  
**पितरोंको यज्ञ में “हव्य” अन्न और आङ्घ “कव्य”**  
**अन्न पहुंचाने के लिये तथा वेद प्रतिपादित धर्म का**  
**सत्योपदेश करने के लिये इस पृथ्वी पर ब्राह्मणों**  
**को ही मुख्य भूदेव ठहराकर साटींफिकेटरूप इकरा-**  
**रनामा लिखदिया है इसी कारण यज्ञ और आङ्घा-**  
**दिमें ब्राह्मणोंके प्रति आदर सत्कार पूर्वक निमन्त्रण**  
**देकर भोजनादि दान देने की अत्यन्त आवश्यकता**

है । इसलिये प्रथम भूदेव ब्राह्मणोंका पजन सत्कार करके पीछे यथाशक्ति अनुसार भले ही प्रपने मित्र वा अन्य किसी अनायादिका भोजनसे सत्कार करना चाहे तो करे यही वेदादि धर्मशास्त्रोंका मुख्य सिद्धान्त है ॥

समाजी—श्रीपरिणिष्ठत जी महाराज ! यह तो ठीक साटीफिकेट रूप श्रच्छा माननीय दृकरारनामा सुनाया परन्तु इसमें मुझे और भी बड़ा सन्देह हुआ है कि आद्वादि शुभकर्मों में सुपात्र, विद्वान् तथा योग्य ब्राह्मणको ठीक २ देखकर निमन्त्रण देना चाहिये कि नहीं; चाहे वो कैसा भी हो ? अर्थात् मध्य मांसाहारी—व्यभिचारी—निम्नित आचरण वाले मूर्खों को भी केवल उस के नाम मात्र 'ब्राह्मण' होने से दिया जाए ? ॥

सनातनी—महाशय जी ! यह आपका सन्देह बहुत सत्य श्रच्छे सारकृप निर्णय कराने वाला है । परन्तु आप निष्पक्षपाती हो कर सभ्यको विचार करके आद्व में अधिकारी और अनधिकारी ब्राह्मणों को सुनो । यथा मनु० अध्याय १ में—

श्रोत्रियायेवदेयानि हृष्यकव्यानिदातृभिः ।

अहंत्तमायविग्राय लस्मैदत्त महाफलम् ॥१२८॥

एकेकमपिविद्वांस दैवेपित्र्ये च भोजयेत् ।

युष्कलंफलमाप्नोति नाभन्त्राङ्गान्वहूनपि ॥१२९॥

दूरादेवपरिक्षेत ब्राह्मणंवेदपारगम् ।  
 तार्थंतत्त्वव्यक्तव्यानां प्रदानेऽसोऽतिथिः स्मृतः ॥१३०॥  
 सहस्रंहि सहस्राणामनुचां यत्रभुज्जते ।  
 एकस्तान्मन्त्रवित्प्रीतः सर्वानर्हतिधर्मतः ॥१३१॥  
 ज्ञानोत्कृष्टायदेयानि कठयानिचहवीचिच ।  
 नहिहस्तावसृतिदरधो रुधिरेणौ त्र शुद्धयतः ॥१३२॥  
 यावतीयसतेग्रासान् हव्यकठयेष्वमन्त्रवित् ।  
 तावतोयसतेप्रेत्य दीप्तशूलष्टर्घयोगुणान् ॥१३३॥  
 नश्राद्वेभोजयेन्मत्रं धनैःकार्योऽस्यसंग्रहः ।  
 नारिन्मित्रंयंविद्यात्तंश्राद्वेभोजयेहद्विजम् ॥१३४॥  
 सम्भोजनीसाभिहिता पैशाचीदक्षिणाद्विजैः ।  
 इहैवास्तेतु सालोके गौरन्धेवैकवेशमनि ॥१३५॥  
 यथेरिणीवीजमुप्त्वा न वस्तालभतेफलम् ॥  
 तथाऽनुचेहविर्दत्त्वा नदातालभतेफलम् ॥१३६॥  
 दातृन्प्रतिग्रहीतंश्च कुरुतेफलभागिनः ।  
 विदुपेदक्षिणांदत्त्वा विधिव्रतप्रेत्यचेहच ॥१३७॥  
 यत्रेतभोजयेच्छाद्वे वहृचंवेदपारगम् ।  
 शाखान्तगमथाध्वर्युच्छान्दीगन्तुसमाप्तिकम् ॥१३८॥  
 एपामन्यतमो यस्य भुज्ञीत श्राद्धमर्चितः ।  
 पितृणांतस्यतृप्तिःस्याच्छाश्वतीसप्रपौरुषी ॥१३९॥  
 नब्राह्मणंपरिक्षेत दैवेकर्मणि धर्मवित् ।  
 पित्र्येकर्मणितुप्राप्ते परिक्षेतप्रयत्नतः ॥१४० ॥

येस्तेनपतितक्षीवा येचंनास्तिकवृत्तयः ।  
 तान्हव्यकव्ययोर्विग्राननर्हान्मनुरब्रत्रीत् ॥१५०॥  
 जटिलंचाऽनधीयानं दुर्बलंकितवंतथा ।  
 याजपन्तिचयेपूर्गां-स्तांश्चश्राद्वेनभोजयेत् ॥१५१॥  
 चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा ।  
 विपणेनचजीवन्तोवर्ज्याःस्युर्हव्यकव्ययोः ॥१५२॥  
 ब्राह्मणस्तवनधीयानस्तुणाऽग्निरिवशाम्यति ।  
 तस्मैहव्यं नदातव्यं नहिभस्मनिहृयते ॥१५३॥

इत्यादि संहितया ॥

“ दाताश्रोंको चाहिये कि वेदपाठी सदाचरणा ब्राह्मणको ही देव-पितृकर्ममें अन्न आदि दें, क्योंकि-  
 ऐसेको दिया हुआ दान महाफल देता है ॥१२८॥ देव  
 कर्म ( यज्ञ ) और पितृकर्म ( श्राद्धमें ) में एक २वि-  
 द्वान् ब्राह्मण को भी जिमादेय तो बहुत फल पाता  
 है और वेदमन्त्र न जानने वाले बहुतसे ब्राह्मणोंको  
 भी भोजन करानेसे वह फल नहीं होता ॥१२९ वेद  
 में पारंगत ब्राह्मणकी दूरसे ही ( अर्थात् पिता-पि-  
 तामह आदि भी कैसे श्रेष्ठ गुणीये इस प्रकार ) प-  
 रीक्षा करे, क्योंकि-वह ब्राह्मण हव्य कल्य देने का  
 तीर्थरूप होता है और उसको दान देनेमें अतिथि  
 के पूजनके समान फल प्राप्त होता है ॥ १३०॥ जहाँ  
 वेदको न जानने वाले दशलाख ब्राह्मण भोजन क-  
 रते हों वहाँ उन सबके भोजनका फल, भोजन करने

से प्रसन्न हुआ एक ही वेदवेत्ता ब्राह्मण धर्मनुसार  
दे सकता है ॥१३१॥ पितरोंके निमित्त दियेजाने वाले  
बलिरूप “कव्य” और देवता और देवताओं को  
दिये जाते हुए बलिरूप “हव्य” ज्ञानसे श्रेष्ठ ब्रा-  
ह्मणको देय, मूर्खोंको न देय, क्योंकि इधिरसे सने  
हुए हाय इधिरसे ही शुद्ध नहीं होते ॥१३२॥ वेदमन्त्र  
हीन ब्राह्मण देवकर्म और पितृकर्म में जितने ग्रासों  
को निगलता है उतने ही धर्मधफते हुए लोहेके शूल  
क्षणिय और गोले यजमानको निगलने पड़ते हैं ॥१३३॥  
आद्वा में मित्र [ दोस्त को न जिमावे, मित्रोंका सं-  
श्रह धनसे करे, जिसको न अपना मित्र समझता हो  
न शब्दु समझता हो उस ब्राह्मणको ही आद्वा में जि-  
मावे ॥ १३४ ॥ ]

जो पुरुष आद्वकर्ममें मित्रमण्डलको दूकट्टा क-  
रके भोजन करता है वह पैशाची दक्षिणा कहाती  
है और यह दक्षिणा ( भोजन दान आदि ) , [ जैसे  
अन्धी गौ एक घरमें हो रहती है उसमें से बाहर नहीं  
निकल सकती तैसे ] इस लोकमें ही रहती है और  
उससे परलोकमें पितरों का कुछ उपकार नहीं होता  
है ॥ १४१ ॥ जैसे ऊपर ( कलरवाली ) भूमिमें बीज  
बोकर बोनेवाला फल नहीं पाता है तैसेही वेदमन्त्र  
न जानने वाले ब्राह्मण को हव्य कव्य देने पर दाता  
को फल नहीं मिलता है ॥१४२॥ विद्वग्न ब्राह्मण को

विधिवत् भोजन कराकर दक्षिणा देने पर वह देने वाले और लेनेवाले यानी दोनों यजमान पुरोहित को इस सोकमें और परसोकमें फलका भागी करती है ॥१४३॥ आद्वामें परमयत्र करके वेद पारंगत ऋग्वेदी ब्राह्मणको, वा सकल शाखाके ज्ञाता यजुर्वेदी ब्राह्मणको अथवा समाप्ति पर्यन्त सामवेद जानने वाले ब्राह्मणको भोजन करावे ॥१४४॥ इनमें से कोई भी ब्राह्मण जिसके आद्वामें सत्कारके साथ भोजन पाता है उसके सात पीढ़ी पर्यन्तके पितर तृप्त होते हैं ॥१४५॥ धर्मज्ञ पुरुष देवकर्ममें ब्राह्मणकी परीक्षा न करे परन्तु पितृकर्म ( आद्वा ) में तो यत्र करके परीक्षा करे ॥१४६॥ जो चोर-पतित वा नपंचक हों, और नास्तिक मतके वा नास्तिकोंकी जीविका खाने वाले हों तो उन ब्राह्मणोंको मनुजीने देवकर्म तथा पितृयज्ञमें अयोग्य अनधिकारी कहा है ॥१४०॥ वेदाध्ययन शून्य ब्रह्मचारी, दुर्बल, ज्वारी, तथा बहुत से यजमानोंको एकसाथ बैठाकर यज्ञ कराने वाले, धन ठहरा कर पूजा करने वाले पुजारी, तथा मांसविक्रेता ऐसे जो निन्दित व्यापार से जीविका करते हों तो उनको देव-पितृकर्ममें न जिमावे ॥१४१॥ १४२॥ वेद न पढ़ने वाला ब्राह्मण तिनकों ( तृष्ण-चा-चार ) की ग्रन्थिके समान निर्जीव हो जाता है, ऐसे ब्राह्मणोंको हठ्य और कथ्य न देना चाहिये क्योंकि वह राखमें होमा हुआ सा वृथा जाता है ॥१४३॥

इत्यादि संक्षेपतासे दिखाये वा कहे गये अधिकारी और अनधिकारी ब्राह्मणों को आद्वादि शुभ कर्मों में परम यत्नसे ठीक २ देख विचार करके पितरोंके निमित्त भोजन कराना चाहिये । और नीचे बताई गयी विधिसे आद्वकर्त्ता और भोक्ता इन दोनों को वैसे ही नियमसे रहना चाहिये । यथा मनु<sup>०</sup> अध्याय ३ के १८७ से १८० श्लोक तक—

पूर्वद्युरपरेद्युर्वा आद्वकर्मण्युपस्थिते ।  
निमन्त्रयेतत्यवरान् सम्यग्विप्रान्यथोदितान् ॥१८७॥  
निमन्त्रितोद्विजः पित्र्ये नियतात्माभवेत्सदा ।  
नचद्यन्दांस्यधीयीत यस्य आद्वं चतुर्द्ववेत् ॥१८८॥  
निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्तितान् द्विजान् ।  
वायुवज्ञानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥१८९॥  
केतितस्तु यथान्यायं हृष्यकव्येद्विजोत्तमः ।  
कथञ्जिदप्यतिक्रामन्पापः सूक्ररतां ब्रजेत् ॥१९०॥

अर्थात्—आद्वकर्मके प्राप्त होने पर आद्वके दिन से एक दिन पहिले और यदि न हो सके तो उसीही दिन जिनके लक्षण कहचुके हैं ऐसे तीन अथवा एक ब्राह्मण को सत्कार पूर्वक निमन्त्रण दे, ॥१८७॥ आद्व में निमन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रणके दिन से आद्वके दिनकी रात्रि तक नियमसे रहे अर्थात् स्त्री-संग आदि न करे और अवश्य करने योग्य काम्य जप आदि के सिवाय—वेदका अध्ययन न करे और

ऐसे आद्व करने वाला यजमान भी इसीही नियम से रहे ॥१८८॥ क्योंकि—निमन्त्रित ब्राह्मणोंमें पितर श्रद्धार्थ्य रूप से स्थित होते हैं और प्राणवायुके समान चलते हुएके साथ चलते हैं और वैठने पर समीप वैठते हैं इसलिये उन ब्राह्मणोंको नियम से पवित्र रहना चाहिये ॥१८९॥ हव्य फव्यमें शास्त्रके अनुसार निमन्त्रण दिया हुआ ब्राह्मण निमन्त्रण को अंगीकार करके यदि किसी कारण \* से भोजन न करे तो उस पाप से दूसरे जन्म में वह शूकर होता है । इसलिये आद्व करने वाले को भी जिस ब्राह्मणको निमन्त्रण

\* जो ब्राह्मण गरीब यजमानका प्रथम निमन्त्रण पाकर पौङ्के यदि साहूकार धनाद्यज्ञिय आदि आकर निमन्त्रण दे तो लोभवश होकर प्रथम आये उस विचारे गरीब को छोड़कर धनाद्यके पास पहिले जावे और असमर्थ यजमान को छोड़कर समर्थवान् यजमान के पास जाना अर्थात् वह समर्थवान् यजमान आहंकार और धन के मद से कहे कि—ऐ ब्राह्मण ! यदि तुम पहिले मेरे पास आद्वभोजनादि खानेको नहीं आते हो तो हम तुमको छोड़कर अन्य किसीको आद्व सिलां देंगे और तुमको आगेके लिये देखेंगे अर्थात् पुरोहित करके नहीं जानेंगे ऐसे लोभदायक यजमानके मदरूप वंछनों पर लोभित होकर जो न्यायपथका परित्याग करता हुआ प्रथम निमन्त्रण दिये हुए उस गरीब यजमानके पास भोजन करने को जो नहीं जाता—वह लोभी—पक्षपाती और छरपोक वा ठग ब्राह्मण उस लोभ वा काहिलता द्वय पाप से दूसरे जन्ममें अवश्य ही शूकर होता है ॥

दिया हो उसीको ही अद्वा ( नम्रता ) से आद्वमें से  
आकर भोजन कराना चाहिये ॥ इति ॥

समाजी—श्री परिणतजी महाराज ! आप श्री-  
वर्णोंने तो ठीक ही सत्यरूपसे आद्वके योग्य और अ-  
योग्य ब्राह्मणोंका वर्णन किया परन्तु आपके कथना-  
नुसार इस वक्त्व ऐसा वेद पारंगत पूर्ण पवित्र विद्वान्  
अब मिलना महाकठिन है । और ऐसे शास्त्रोत्तमि-  
यम पालने वाले वेदवेत्ता सदाचारी ब्राह्मणोंके सि-  
वाय अन्य मूर्ख दुराचारी ब्राह्मणको आद्वमें खिला-  
ना अवश्य निषिद्ध है—क्योंकि—धर्मशास्त्रके आच्चानु-  
सार असंस्कृत मूर्ख ब्राह्मणको आद्वमें भोजन करा-  
ना जैसा ही है जैसा कि भस्म ( राख ) में घीकी  
आहुति निष्फल होती है । इसलिये आद्व कैसे सिद्ध  
हो सकेगा ? ॥

सनातनी—ग्रिय महाशयजी ! आप जैसा वि-  
चार रखते हो वह निःसन्देह सत्य है—परन्तु इस स-  
भवानुकूल आप क्षमिय—वैश्य वर्गेरह प्रथम अपने  
गुण—आचरणोंकी तरफ भी कुछ ध्यान देकर न्यायसे  
सोचो और कहो—कि नहीं, केवल ब्राह्मणोंको ही दो-  
पयुक्त ठहरानेका भूंठा बहाना करके अपने अवश्य  
कर्त्तव्य देय—पितृयज्ञादि कर्म करनेसे भागते हो । म-  
हाशय जी ! ऐसे आपके [ अवश्य कर्त्तव्य कर्म का  
त्याग ( लोप ) करने वाले ] पाप—रूप निर्बंल वचन  
आप जैसे सच्चे क्षमिय वैश्यों के सन्तान के मुख से

निकलें—तो इससे ज्यादा अपने बड़ोंकी [ पूर्णभक्ति नम्रताभावसे होनेवाले अश्वमेध राजसूयादि यज्ञोंमें पाई हुई ] वीरता और प्रतिष्ठामें धब्बे लगाने वाले और कौनसे वचन बाकी रहे ? ! आ हा ? ! “विनाशकाले विपरीतबुद्धिः” इस महाबाक्य के अनुसार ठीक देखा जाता है कि कलि महाराजके प्रताप से बुद्धि और वीरता तथा नित्य कर्मकाण्डों में प्रेम विपरीत ( उलटा ) हो गया ? ! ? तौभी है क्षण मुनियोंके सन्तानों ! और सच्चे शूरवीर पवित्र क्ष-  
विद्य-वैश्योंके पुत्रों ? अब जरा जागो और विचार-रूपी आंखसे देखो— सोचो कि हमारे ही जैसे निर्बल संतान पर दयाके भण्डार महर्षि श्रीमनु महाराज ने अपने दयाभाव से श्रवण्य करने योग्य ग्राह्यादि कर्मोंकी रक्षा होनेमें कलिकालके समय योग्य और अयोग्य ग्राहणादिकोंका किस तरहसे निर्णय करके बतलाया है कि—

अन्येकृतयुगेऽधर्मा—स्त्रेतायां द्वापरेऽपरे ।  
अन्येकलियुगेन्णां यगह्रासानुरूपतः ॥ ८५ ॥  
तपःपरंकृतयुगे त्रेतायांज्ञानमुच्यते ।  
द्वापरेयज्ञमेवाहु—दर्नमेकंकलौयुगे ॥ ८६ ॥

अर्थात्—सत्ययुग में और धर्म, त्रेतामें और,  
द्वापरमें और तथा कलियुगमें और । त्रेतादि युगों  
में युगोंकी हीनता ( घटती-बढ़ती ) होनेसे धर्म  
और अधर्म की भी विलक्षणता हो जाती है ॥

As the vegetable kingdom increases in thier beauty colours and nourishment at thier due time, such as "spring season" and less in the other seasons similarly in the times of Sityayuga spirituality and religions are more Predominants and very much less in respective Yugas Treta, Dwaper and much less in Kaliyuga".

**अथर्वा-** जैसे कृतुओंमें पदार्थोंके स्वभाव बदल जाते हैं तैसे ही युगोंमें भी शक्तियोंके फेरफार से पदार्थोंका स्वभाव बदल जाता है और रस, कर, शक्ति-आकार-उमर और कर्म फल आदि भी युगों के बदल जानेसे बदल जाते हैं । यद्यपि तपश्चर्या-आत्मज्ञान-यज्ञ और दान वगैरह सब कर्म सत्य-आदि सब युगोंमें सदा सेवन योग्य हैं तथापि सत्य-युगमें तपश्चर्या प्रधान (मुख्य) और आत्मन्त फलदायक है । चेतामें आत्मज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान ही मुख्य फलदायक है । इसलिये वेदशास्त्र पठन और उनके अनुसार धर्म कर्म-अनुष्ठान करनेमें जो हीनता हुई है वह केवल ब्राह्मणोंमें नहीं किन्तु सब वर्णश्रियोंमें कलियुगके प्रभावसे समान ही हो रही है । फिर केवल ब्राह्मणोंका ही धर्मिकार मनुस्मृतिके अनुसार देखा जावे तो किञ्चित् उपने शापकी ओर भी सब लोगोंसे दृष्टि की जावे कि मुझमें विशेष धर्मकी स्थिति तो किनारे रही परन्तु मनुष्यमात्रका सदा आचरणीय सामान्य धर्म भी कोई है वा नहीं । किन्तु केवल ब्राह्मणों के ही

अधिकार का निश्चय करने पर और लगाना और अपनी और कुछ नहीं देखना यह बुद्धिमानों और न्यायवत्तीं विचारवानोंकी रीति नहीं है । क्योंकि आद्वादि कर्म करने वाले क्या ब्राह्मण क्या और जातियोंके सब मनुष्यमात्र । अर्थात् सब वेदमता-नुयाइयोंको सत्-धर्मका आचरण अपने वर्णाश्रमके मुताबिक ठोक २ करना चाहिये । जैसा कि—  
 न्यायार्जितधनस्तत्व-ज्ञाननिष्ठोजितेन्द्रियः ।  
 आद्वकृतसत्यवादीच सत्कर्ममुच्यतेनरः ॥ १ ॥

अर्थात् न्यायरीति से जो धनसंचय करता है, ईश्वरके तत्त्वज्ञानके विचार मे जिसका निष्ठय है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको खोटे विषय भोगोंसे रोका हुआ है अर्थात् गृहस्थाश्रमके धर्मोंमें दृढ़ स्थित है तथा आद्वादि देव-पितृकर्म जो सदा करता है और सत्य वचन बोलता है तथा इष्टापूर्त्तादि सत्-कर्म करता है वह मनुष्य सब कोई चाहे किसी भी वर्ण का हो तो जन्म भरणकृप संसारकलेश से छूट जाता है । यही श्लोक याज्ञवल्क्यस्मृतिमें है परन्तु कुछ भेद है । इस श्लोक में लिखे आद्वादि सत्कर्म करने वाले सब मनुष्योंमें जो २ गुण चाहिये सो वे ही लोग न्यायदृष्टि से अपने २ में देखें कि उन में ऊपर लिखे गुण कितने और कहांतक हैं—तो सो-चने से निश्चय हो जायगा कि इन गुणोंमें से थोड़ा

अंश भी अब के, आद्वकर्मादि करने वाले सब मनु-  
 ष्योंमें कठिनतासे प्राप्त हो सकेगा । तो फिर के-  
 वल ब्राह्मणोंके ही धर्म का निर्णय करनेमें कठिबद्ध  
 होकर प्रवृत्त होना और अपनी ओर [ कि कैसे २  
 कुकर्म सेवन करने और कैसे २ अन्यायोंसे धन, सं-  
 चय करना और शास्त्रोक्त सदाचार किंचित् भी  
 कभी आचरण नहीं करना ] दृष्टिमात्र नहीं करनी  
 यह कौन न्याय और बुद्धिमत्ताकी बात है । महा-  
 शय जी ! ब्राह्मणोंमें तो कोई न कोई कुछ न कुछ  
 वेदशास्त्र पढ़े हुए और उसके अनुसार अपना धर्म  
 कर्म अनुष्ठान करने वाले शायद मिलही जावें प-  
 रन्तु ऐसे प्रश्नकर्त्ता महात्मा को अपनी ओर अपने  
 साधियोंकी ओर दृष्टि करके न्यायसे सोचना चा-  
 हिये कि वे लोग सनातनधर्मको रीति से नित्यक-  
 ञ्चय धर्म कर्मका अनुष्ठान ( सेवन ) करना तो जाने  
 दो परन्तु उनके नवीन मतके गुरु के उपदेश किये  
 अन्यों के अनुसार भी कितने संस्कार उन्हों के हुए  
 हैं और होते हैं । और कितना वेद और वेदाङ्गों  
 का तर्थ और शास्त्रोंका अध्ययन और प्रतिदिनके  
 सन्ध्यादि पंचयज्ञ कर्म कितने किये जाते हैं कि  
 जिन महाशयोंको दो चार वेदमन्त्रोंके स्वर सहित  
 शुद्ध पाठमात्र उच्चारण करनेका ज्ञान नहीं है तो  
 उनका अर्थ जानने की तो क्या बात है । तो इन  
 सब ऊपर लिखे वा कहे फारणोंसे यदि विद्वान् स-  
 त्कर्मों पात्र ग्राहण जहांतक आद्वकर्म करनेके वास्ते

मिलें तहांतक वे अवश्य खोज करके भी आद्वकर्ममें  
जाने योग्य हैं—परन्तु जो समयके शनुसार अधिक  
उत्तम अधिकारी पात्र ब्राह्मण न मिलें तो धर्मरक्षक  
महर्षि मनु भगवान् ने अध्याय २ श्लोक ११८ में—  
गायत्रीमात्रसारोऽपि वरंविप्रः सुयन्त्रितः ।

नायंन्त्रितस्त्विवेदोऽपि सर्वाशो सर्वविक्रयो ॥११८॥

अर्थात्—केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी  
यदि ( सुयन्त्रित ) शास्त्रनियमित अर्थात् अभद्र भ-  
क्षणादि रहित और व्यभिचारादि कर्मसे रहित है  
तो वह थोड़ा पढ़ा हुआ भी ब्राह्मण समयानुसार अ-  
त्यन्त श्रेष्ठ और आद्वादि कर्ममें योग्य पूजनीय है।  
परन्तु ( अयंवित ) जो निषिद्ध मद्यमांसादि भक्षण  
करने वाला और वेचने वाला है तथा नित्य कर्त्त-  
व्य संध्योपासनादि कर्म नहीं करने वाला और व्य-  
भिचारी वह यदि वेदवेत्ता महान् परिणित भी हो  
तो भी वह श्रेष्ठ नहीं और न आद्वादि कर्ममें लाने  
योग्य है। अब विचारपूर्वक देखो कि अन्तमें श्री म-  
हर्षि मनु भगवान् ने कम से कम केवल गायत्रीमात्र  
जानने वाले मुलक्षण सुपात्र वैष्णव ब्राह्मण को ही  
श्रेष्ठ और आद्व के योग्य चिद्ध किया है। इसलिये  
महर्षि श्रीमनुजीकी आज्ञा से अत्यन्त विद्वान् धर्मज्ञ  
ब्राह्मणके अभाव में केवल गायत्रीमात्र जानने वाले  
और सदाचारी सुपात्र ब्राह्मण को ही सत्कारपूर्वक

निमन्त्रण देकर श्राद्धमें श्रद्धासे भोजन कराकर पि-  
तृयज्ञको मिठ्ठा करना हम वेदमतानुयायियोंका मुख्य  
कर्तव्य है । और जंगल वा म्लेच्छादि देशमें सर्वथा  
ऐसा केवल गायत्रीमात्र जानने वाला भी यदि सु-  
पात्र ब्राह्मण न मिल सके तो—

अलाभेन्नाह्मणस्यैव कोशःकार्योबटुःप्रिये ।

प्रभासखण्ड वाक्य, ।

तथा=विधायवादर्भवटून् आसनेपुसमाहितः ।

प्रैषानुप्रैषसंयुक्त-विधानंप्रतिपादयेत् ॥१॥

महर्षि श्री देवलस्मृति,

ज्यर्थात्-सुपात्र ब्राह्मण के अभाव में दर्भों की  
छोटी प्रतिमाएँ बनाकर उन को ही ब्राह्मणरूप में  
कल्पित करके पवित्र आसनों पर बैठाकर श्राद्ध के  
मन्त्रोंसे ( प्रैषानुप्रैष ) एष गन्ध—सुगन्ध—धूप दीप  
नैवेद्यादिकों से ज्यर्थात् गंध ( चन्दन ) पुष्प धूप  
दीप भोजनादि को उन कल्पित ब्राह्मणों के प्रति  
श्रद्धासे अर्पण करके लाप ही श्राद्धकर्मका अनुष्टान  
पूर्ण करे । यदि ऐसा भी न हो सके तो श्रीकात्या-  
यनस्मृतिके वचनानुसार—

आपद्यनग्नौतीर्थेच प्रवासेपुत्रजन्मनि ।

आमश्राद्धप्रकुर्वीत भार्यारजसिसंक्रमे ॥ १॥

अनग्निरधनोवापि तथैवद्यपसनान्वितः ।

आमश्राद्धद्विजकुर्याहु वृषष्ठस्तुसदैषहि ॥ २ ॥

अर्थात्—श्रापत्कालमें, तथा शग्नि के न मिल सकनेमें, तीर्थमें प्रवास यानी मुसाफरीमें, पुत्रजन्म के समयमें और रजोधर्म में तथा संक्रान्ति अर्थात् पुण्यकालमें “श्रामश्राद्ध” यानी कच्चा सीधा लेकर पितरोंके निमित्त यज्ञोपवीत वामपाशवं करके “स्वधा पितृभ्यः इदं अन्नं समर्पयामि” ऐसा उच्चारण करके सुपात्र सदाचारी गरीब ब्राह्मणके घरमें वह अन्न देकर श्राद्धकर्म पूरा करे परन्तु शूद्रजाति हमेशा “श्रामश्राद्ध” करे अर्थात् कच्चासीधा संकल्प करके ब्राह्मणोंको दे । यदि इतना भी न हो सके तो—  
 सर्वाऽभावेक्षिपेदग्नौ गवेदद्यादथाप्सुवा ।  
 नैवप्राप्स्यलोपोऽस्ति पैतृकस्यविशेषतः ॥ १ ॥

महर्षि देवलस्मृति ॥

अर्थात्—कुछ भी नहीं हो सके तो भी किंचित् कञ्चा वा पकाया हुआ भोजन पितरोंके नामसे शग्निमें, अथवा जलमें वा गौको देवे परन्तु पितृकर्म का सोष न करे । और यदि मनुष्य दरिद्री (कंगाल) असमर्य होनेके कारण इतना भी न कर सके तो—  
 वृहन्नारदीय पुराणशास्त्रके वचनानुसार—  
 अथवारोदनंकुर्यात्—अत्युच्चैर्विजनेवने ।  
 दरिद्रोहंमहापापी वदेदितिविचक्षणः ॥ ॥

वृहन्नारदीय पुराण अथाय २६ ॥

इस नारदीय वाक्यानुसार श्राद्धके दिन निजें वनमें जाकर “मैं महापापी दरिद्री (कंगाल) हूं”

ऐसे दीन वचन बोलकर पितरोंसे क्षमा मांगे परन्तु पितृकर्मका त्याग न करे । और यदि रोदन करनेमें भी संकोच करे तो—

**सर्वाभावेवनंगत्वा कक्षमूलप्रदर्शकः ।**

**सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैःपठिष्यति ॥५७॥**

नमेऽस्ति वित्तं न धनं न चाऽन्यत्, आद्व-  
स्य योऽर्थं स्वपितृन्नतोस्मि । हृष्णन्तु भक्त्या  
पितरो मर्याते भुजौततोवत्मनिमारुतस्य ॥५७॥

श्रीबाराहपुराण अध्याय १३ में ॥

अर्थात्—बन में जाकर दोनों भुजाओं को ऊपर करके नम्रता और दीनभावसे हाथ जोड़कर सूर्यादि लोकपालोंके सन्मुख अपनी कुक्षि दिखाकर उच्चस्वर से कहे कि—हे पितृदेवो ! मेरे पास इतना अम्ब, धन तथा अन्य कोई भी आद्वोपयोगी—पदार्थ कुछ भी नहीं है—इसलिये मैं अपने पितरोंको केवल नमस्कार पूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि हे सूर्यादि लोकपालो ! इस मेरी भक्तिरूप प्रार्थना से मेरे पितर तृप्त होकर मुझपर भ्रस्त्र रहें ॥ इति ॥

समाजी—श्रीमान् परिष्ठत जी महाराज ? यह मुझे आप श्रीयरों ने ऐसा न्यायरूप युक्तियुक्त ग्रामणोंका निर्णय फरके घतलाया है कि जिस से लाय मुझे कोई भी सन्देह वाकी नहीं रहा और आपत्ति मैं भी श्राद्ध करनेका ऐसा धर्मशास्त्रोक्त उत्तम सर्व-

प्रान्य मार्ग वतलाया कि बस अब मैं पूर्णकृतार्थ हुआ हूँ॥

हे प्रिय परमपूज्य परिणितजी ! परब्रह्म परमाभा आप जैसे धैर्यवान् सुशील विद्वान् सत्योपदेशक ब्राह्मणकी सदा प्रतिष्ठा यथ बढ़ाये और आप श्रीवरोंको सदा ग्रसन्न रखते कि जिन श्रीवरोंने नितान्त परमार्थरूप महान् उपकार करके मेरे और विल्क अन्य मेरे समाजो भाइयों के तथा आस्तिक साधारण सनातनी भ्राताओंके भी अति कठिन सन्देह रूप अन्धकारको प्रवलशास्त्र प्रमाण और अकाट्य सद्युक्तिपुत्र वचनों से सेसे दूर किया है कि जैसे सूर्यनारायणके प्रखर तेजसे संपूर्ण जगत् का अन्धकार नाश ब दूर हो जाता है—इसलिये मैं इस आद्विषयमें तो निःसन्देह आप धर्मरक्षकको गुह समझ कर आप सद्गुरओंके चरणकमलों में ग्रेम से शिर नवाता हूँ । हे प्रभो ! मुझपर समा करो और मुझको आशीर्वदि देजो ॥

सनातनी—प्रिय महाशय जी ! सदासुखी भव ?  
आयुष्मान्—भव ?

इति श्री श्राद्धपितृमीमांसायां श्राद्धकर्मणि

ब्राह्मणानामधिकाराऽनधिकारनिर्ण-

यने समाप्तोयं पष्ठोऽध्यायः ॥

श्रीसाम्यशिवार्पणमस्तु ॥

ओऽम्—शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

“ॐ—नमोऽन्तर्यामिणे”

## ॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

मेरे प्रिय आधुनिक आर्थसमाजी महाशर्योंको निम्नदर्शित आद्विषयक चिश्ति ( ३० ) प्रश्नों के शास्त्रप्रमाण युक्तिगुक्त उत्तर देनेके लिये प्रार्थना ॥

प्रश्न १—स्वा० दयानन्दजीने सन् १८७५के सत्यार्थप्रकाशमें “जितने जीवित हों उनके नामसे तर्पण न करे किन्तु जो २ मरणये हों उनके नामसे तर्पण करे” लिखा है सो इसको तुमप्रमाण क्यों नहीं मानते ? । यदि मानते हो तो जीवितोंको आद्वतर्पण कहना मिथ्या क्यों नहीं है । यदि कहो कि स्वा० द० ने ऐसा नहीं कहा और न लिखा किन्तु छपाने शोधने वालोंने वैसा बनादिया है, तो क्या तुम में से कोई भी समाजी महाश्रय घेद पुस्तक हाथमें लेकर शपथसे कहदेगा कि यह सत्य है । अर्थात् स्वामीजीने नहीं लिखा किन्तु छपाने शोधने वालोंने ही मिलादिया ॥

प्रश्न २—जब ऋषवंवेद १८ । १ । ४४ ॥ ( असुं य ईयुः ) मन्त्रांशका शर्य प्राणवायुमात्र सूदमदेहधारी पितर निष्कृतके शनुसार चिद्र हो चुका है तो जीवित स्थूल देहधारियोंमें वह शर्य कैसे घट सकेगा । क्या उससे मृतपितर चिद्र नहीं हैं ? तथा ऋषवंवेद

१८ । २ । ४८ ( य आविविशुर्हर्वन्तरिक्षम्० ) जो पि-  
तर बड़े अन्तरिक्ष लोक में प्रवेश करनुके सो क्या  
तुम्हारे जीवित ही पितर अन्तरिक्ष आकाशमें प्रवेश  
कर सकते हैं ? । यदि नहीं कर सकते तो भूतपि-  
तरोंका आद्व तर्पण उक्त मन्त्रसे सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥

प्रश्न इ—जब अर्थर्ववेद १८ । ३ । ४४ ॥” ( अग्नि-  
ष्वात्ताः पितर एह गच्छत ) यहाँ हविष् खानेके लिये  
उन पितरोंको बुलाया गया है कि जो मरणानन्तर  
अग्निमें जलाये गयेथे । क्योंकि ( यानग्निरेव दह-  
न्तस्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः ) जिनको जलाता  
हुआ अग्नि चाट जाता है वे पितर अग्निष्वात्त  
कहाते हैं यह अग्निष्वात्त पदका अर्थ शतपथ ब्रा०  
में लिखा है तब वे अग्निष्वात्त पितर जीवित कैसे  
हो सकते हैं । इस प्रभाणसे भी मरोंका आद्व होना  
सिद्ध क्यों नहीं है ? क्या तुम्हारे मतमें जीवित ही  
जलादिये जाते हैं और क्या जलजाने पर भी वे  
लोग जीवित ही बने रहते हैं ? यदि ऐसा हो तो  
दाहकर्म होजाने पर किसी समाजी को क्या जी-  
वित दिखाश्योगे ? ॥

प्र० ४—अर्थर्ववे० १८ । ३ । ७२ ( ये ते पूर्वपरा-  
गताः ) जो पहिले पितर पूर्वकालमें व्यतीत होगये  
उनके लिये भी तर्पण करना चाहिये । क्या इस प्र-  
भाण से मरेहुये पितरों का आद्व तर्पण सिद्ध नहीं  
होता ? और क्या ऐसा क्यन जीवितोंमें घट सकता है !

प्र-५-अथर्वे० १८ । ४ । ४८ । ( मृताः पितृषु संभवन्तु ) मरे हुए पितर पितृयोनिमें प्रगट हों उन्हींके लिये आद्व तर्पण होता है । क्या यहां मूल-वेदमें भूत शब्द नहीं ? और क्या इससे मरोंका आद्व तर्पण सिद्ध नहीं होता ॥

प्र०६-अथर्व० १८ । ४ । ६३ ( अधामासि पुन-रायातनो गृहान्० ) यहां पार्वणादि भासिकशाद्वमें पितरों का विसर्जन करके महीनेभर बाद फिर बुलाना कहा है । सो क्या जीवित पितरोंको तुम महीने २ में एकही बार भोजन देते हो ? क्या वे ऐसा करनेसे जीवित रह सकते हैं ? यदि हां कहो तो ऐसे कौन हैं ? और ( नमः पितृभ्यो दिविषद्भ्यः० ) अथर्व वे० १८ । ४ । ८० । दिवि नाम स्वर्गलोक में रहने वाले पितरोंको यहां नमस्कार कहागया है । सो क्या जीवित ही समाजियोंके पितर स्वर्गमें जाते हैं ? यदि कोई जीवित स्वर्गमें जाते नहीं दीखें तो इससे मरोंका आद्व करना सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥

प्र० ७-क्या तुम लोग ( अपराह्णः पितृणाम् ) इस शतपथ प्रमाणके अनुसार भूखे पिताको भी दोपहरके बाद ही भोजन दोगे ? और मनुष्यके भोजनका समय मध्याह्न ह लिखा है तो क्या तुम्हारे जीवित पितर मनुष्य नहीं हैं ? जब कि मनुष्य हैं तो मनुष्यों और पितरोंका भिन्न समय क्यों रखा है ? क्या इससे जीवित मनुष्यों से पितरोंका भिन्न

होना सिद्ध नहीं ? तथा जब शतपथ कारड २। ३  
४। में लिखा है कि ( तिरद्वयै-पितरो मनुष्येभ्यः )  
मनुष्योंसे पितर छिपे नाम अदृश्य होते हैं । चो क्या  
जीवित मनुष्य पितर मनुष्यों से कभी छिपे नाम  
अदृष्ट रह सकते हैं ? क्या इससे मृतपितरोंके लिये  
आद्व स्पष्ट सिद्ध नहीं है ? एवं शतपथमें पिरण्डान  
के क्षाद् पीठ फेर लेना लिखा है सो क्या तुम जी-  
वित पितरोंको भोजन परोस कर उनकी ओर पीठ  
फरदेना ठीक समझते और वैसा ही करते हो ? ॥

प्रश्न ८—पदि श्रापके ही मतमें स्वासी द्यानन्द  
जीने स्वप संस्कारविधि शब्दी स० १८४७ के पृष्ठ १०४  
समावर्तनसंस्कारप्रकरण में लिखा है कि “हाथ में  
जल लेकर, अपसवय यानी यज्ञोपवीत वासपाशव क-  
रके दक्षिणादिशाकी तरफ मुख करके “ॐ पितरः शु-  
न्धधवम्” इस मन्त्रसे वह जल पृथकी पर छोड़े” सो  
क्या तुम इससे भी जीवितोंको जलदान मानोगे ।  
यदि जीवितों का ही तर्णण मानना चाहते हो तो  
( भूमि पर जल छोड़े ) को काटकर ( पिताको भूमि  
में लिटाकर उस के मुख में जल छोड़े ) ऐसा क्यों  
नहीं बना देते हो ? क्या स्व० १० द० के ऐसा लिखने  
से ग्रन्थ भी मर्तोंका तर्णण मानना सिद्ध नहीं है ? ॥  
प्र० ८—संस्कारविधि सं० १८४७ पृ० १७८—गृहाश्रम प्र-  
कारणमें वलिवैश्वदेवविधि—( शोऽन्तु पितृभ्यः स्वधा-  
यिभ्यः स्वधानमः ) इस मन्त्रसे एक ग्राम दक्षिणमें

रखनेको लिखा है सो यह ग्रास वा भाग किनको दिया जाता है ? और दक्षिणमें क्यों धरा जाता है ? क्या इससे मृतश्चाद्ध मानना सिद्ध नहीं है ? ॥

प्र० १०—ऋग्वेदादि भूमिकामें स्वा० द० ने “अग्निष्वात्” का अर्थ अग्निविद्याको जानने वा अग्निसे विशेष कार्य साधन करने वाले अंजनके ड्राईवर आदि किया और आगरे शास्त्रार्थ में स्वा० तुलसीराम आदि समाजी उपदेशकोंने जले हुए मुर्दा के परमाणु अर्थ किया इन परस्पर विरह दोनोंमें कौन अर्थ सत्य और दो में कौन एक मिथ्या है ?

प्र० ११ क्या समाजी लोग अग्निष्वात् पितरों को बुलानेके समय काले २ अंजनके ड्राईवरोंका आवाहन करते हैं अथवा पं० तुलसीरामके किये अर्थानुसार जले हुए मुर्दाके परमाणुओंको ( अग्निष्वातः पितरएह गच्छत सदस्सदस्सदत ) कहते हैं कि हे जले हुए मुर्दाके परमाणुओ ? तुम लोग यहाँ आओ, अपने २ आसन पर बैठो और भोजन करो तथा भोजनके बाद हमको बहुतसा धन दे जाओ । सो वया मुर्दाके जले हुए परमाणु आते, आमनोंपर बैठते, और भोजन करके धन दे जाते हैं ? इससे क्या समाजियों के पितर मुर्दा के जले हुए परमाणु सिद्ध नहीं हैं ? ॥

प्र० १२—ऋग्वेद भाष्यभूमिकामें स्वा० द० ने प्रतिज्ञा की है कि हम निहत्त-यत्तयथादि भाचीन

आर्थग्रन्थों के अनुकूल वेदार्थ करते और मानते हैं, फिर अग्निष्वात् पदका अर्थ शतपथ से विरुद्ध मन-माना व्याकरण की स्वरप्रक्रिया से भी विरुद्ध किया है—सो मिट्ठा क्यों नहीं ? और ऐसा करनेसे स्वाठा० द० की पहिली प्रतिज्ञाका खण्डन क्या नहीं होगया ? इसका तुम क्या जवाब रखते हो ? ॥

ग्रन्थ १३—सत्यार्थ—ग्रकांश छपे सन् १८८७ के पृष्ठ ८८ वें में स्वामी द० जीने आद्वतपूर्ण का अर्थ करके अखीर में कहा है कि यह जीवितों को है मर्तों को नहीं, और फिर उपितपूर्ण पितृतपूर्ण लिखके दूसरे से शागे लिखे अर्थ सिद्ध किये हैं कि—११ यारह ग्रकार के पितर ये हैं—

नं० १—जो परमेश्वर परमात्मा और पदार्थविद्यामें निपुण हो वह ( सोमसद )

नं० २—जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि के जानने वाले हों वे ( अग्निष्वात् )

नं० ३—जो उत्तम विद्या बुद्धि युक्त उत्तम व्यवहारमें स्थित हों वे ( वर्हिपद् )

नम्बर ४—जो ऐश्वर्यके रक्षक महीयधिके पान करनेसे रोग रहित और अन्य के ऐश्वर्य रक्षक, औषधियों को देकर रोग नाशक हों वे ( सोमया ) पितर हैं ॥

नम्बर ५—जो सादक ( नशेकारक ) और हिंसाकारक द्रव्योंको ढोड़कर भोजन करते हैं वे ( हृषिभुज ) पितर ॥

नम्बर ६—जो जाननेके योग्य वस्तुके रक्षक और  
घृत दुधादि खाने पीने वाले हों वे ( श्राव्यपा )

नम्बर ७—जिनका अचला धर्म करनेका सुखरूप  
समय हो वे ( सुकालित् ) पितर हैं ॥

नम्बर ८—जो दुष्टोंको दण्ड और श्रेष्ठोंका पा-  
लन करने हारे न्यायकारी हों वे ( यम् ) ॥

नम्बर ९—सन्तानोंके अन्न और सत्कारसे रक्षक  
व जनक हों वे ( पिता ) ॥

नम्बर १०—जो अन्न और सत्कारोंसे सन्तानोंका  
मान करें वे ( माता ) ॥

नम्बर ११—अपनी स्त्री, भगिनी, सम्बन्धी और  
एक गोत्रका तथा अन्य कोई भद्रपुरुष व वृद्ध हो तो  
उन सबको अत्यन्त श्रद्धासे उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर  
पानादि देकर शक्ति प्रकार जो तृप्ति करना है वह  
आद्वा व तर्पण कहा जाता है ॥ इति ॥

अब समाजी महाशय यहां पर स्पष्टरूपसे बतावें  
कि नम्बर एक १ के पितरों में घटार्यविद्या जानने  
वाले चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान या शगरेज,  
अथवा सभी ही पितर होंगे या नहीं ? ॥

नम्बर २ दूसरेके पितरोंमें श्रिन और विद्युत्  
( यानी विजुली ) आदि को समझकर उससे टेली-  
ग्राम और टलीफोन आदि स्काम करने य बनानेवालों  
तारबायू बगैरह और श्रिन से रेल का शज्जन तथा  
ओर जशीन बगैरह बनाने य चलाने वाले दक्षिण-

यर, गाड़ी, ड्राईवर और भोदलर फिटर वगैरह आप के पितर होंगे या अन्य कोई ? यथोंकि इस वक्त श्रग्नि और विजलीको ज्यादा समझने व काममें लाने वाले तो ये ही उपरोक्त विलायत के महाशय और हिन्दुस्तानके मिस्त्रो वगैरह हैं ॥

नम्बर ३ में तो अंग्रेजों के सिवाय और, कोई होंगे ही नहीं । यथोंकि वे ही १०० में ८८ तक पढ़े हुए और सायन्समें इस वक्त सबसे बढ़े चढ़े हैं कि जिन बुद्धिमानोंकी राह लेकर व उन्होंके रिवाजको पसंद करते हुए अपनी समाजिनी लोडियोंको अंगरेजी लोडियोंके समान छूट घूमने फिरने और जलसों (उत्सवों) में सहस्रों मनुष्यों के बीच बैठने व लोकचरारी करनेमें स्वतन्त्रता देकर हमारी भारतवीरांगनाओंके सवातन पतिव्रत धर्मभर्यदा को तोड़ते हुए, स्त्रियोंके परम लज्जारूप आभूषणोंको अपने ही हाथोंसे ढीन रहे हैं कि जिसका नतीजा यव यह निकल रहा है कि वे समाजिनी विदुषियें नियोग और विधवाविवाह करना मंजूर करके यारह ११ पति तक खसम करना चाहरही हैं और दूसरा खसम तो बहुतेरी खान्दानी समाजिनी विधवाओं ने किया है वल्कि अंडित तुलसीरामादि समाजी उपदेशकों ने तो इस निन्दित, व्यभिचाररूप नियोग वा विधवाविवाह पर और भी जोर लगाकर पचकन्याचरित्रादि \* छोटे छोटे ट्रैक्ट रचकर प्रसिद्ध करते हुए उन तप्त विदुषियोंको भ्रमन किया है । याह ! याह ! ! ये ही तो

इन आध्यात्मिकियोंके धर्म हैं ! ! ! अफ़सोस ! और और लज्जा ! हे प्रभो ! हे नाथ ! तू ही भारतवीरांगनाश्चोंके पतिव्रतधर्म व सनातन आध्येत्यर्थदाकी रक्षा कर ॥ अस्तु ॥

नम्बर ४ में शायद डाक्टर और हकीम ही होंगे । क्योंकि वही लोग औपधि जानते व दूसरों को औपधियें देकर आराम करते हैं ॥

नम्बर ५—में सरावगी, वैष्णव, शैव यह होंगे । क्योंकि इन लोगों के बराबर हिंसाकारक मांस और मदिरा आदि मादक द्रव्यों से ज्यादा परहेज दूसरों को नहीं होता ॥

नम्बर ६ में तो सम्पूर्ण संसार ही पितर होगा क्योंकि घी दूध सब ही खाते हैं । बल्कि भंगी चमार आदि और पशु भी दूध पीते हैं । इसलिये घी और दूध खाने पीने वाले सब ही इन समाजियोंके “आज्यपा” नाम वाले पितर होंगे ॥

नम्बर ७ के पितरों में सिर्फ अमीर लोग ही होंगे । क्योंकि उन्हींका सुखरूप अच्छा समय जाता है

और नम्बर ८ में तो सिवाय राजाके कोई हो ही नहीं सकता ? क्योंकि दुष्टों को दण्ड देनेवाला

\* इन व्यभिधार प्रचारक निन्दित पुस्तकोंका मुख्तोह ज्याय और सद्युक्तियुक्त सरणी श्री सनातनधर्मरक्षक विद्यावाचस्पति विद्वार प० भीमसेन ग्रन्थादि भरोपदेशको के रचित “विद्याविद्याहमीमासा” और “पठदकन्याचरित्रादि” पुस्तकोंमें देखो ॥

न्यायकारी राजा ही हो सकता है । अब कहिये कि स्वामी जी के लेखानुसार तो संसारभर चाहे कोई जाति हो आप का पितर अर्थात् पिता हुआ और पुत्र का नाम ही न रहा क्या यह बात यथार्थ है ? और इसको आप मानते हैं कि नहीं । अगर मानते हैं तो वह खबरदार हो जाइये ? व आजसे रिश्तेका नाम मिटा दीजिये क्योंकि जाहिरा देखनेमें अगर्वल वह आपका भाई या भतीजा या लड़का है या कोई दूसरी कम कीम है परन्तु उस ने भी दूध पिया है व अभीतक दूध पीता होगा आजसे उस को पिता ही कहिये और फिर अगर आप के समाजियोंमें से किसी को कोई जाति जंच नीच भली बुरी गाली दे या मारवैठे तो इस का बुरा न मानिये क्योंकि वह भी शायद स्वामी जीके लेखानुसार किसी किस्मके पितरोंमें से आपका पितर जरूर ही होगा और कदाचित् अगर और किसी नम्बर में न भी आया तो दूध पीने वाले पितरोंमें तो अवश्य ही आवेगा सिवाय इसके अब किसी आदमीकी ताबेदारीमें वलिक जूतातक उठानेमें आपको परहेज न करना चाहिये क्योंकि संसार में पितृसेवा ही मुख्य \* धर्म है

+ वाह ! ! स्वामीजीने क्या ही अच्छा ( जीवित पितरोंका ) आहु तर्पण कराया । पन्थ भाग्य है उन आधुनिक आद्योंके फि जो सम्पूर्ण संसारभर के मनुष्योंको अ-

अगर आप इतने पर कहें कि पितृशंबद्से पिता का अर्थ नहीं है तो आप ही कहिये क्या होगा ? जरा स्वामी जीका लेख सत्यार्थप्रकाश पृ० ८८ पंक्ति २३ वा उन्हीका यजुर्वेदभाष्य अध्याय १८ को देखलीजिये॥

प्रश्न १४—स० प्र० पृ० १०० में “धन्वन्तरये स्वाहा । सहव्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा । ऊँ सानुगायेन्द्राय नमः । ओ३म्—सानुगाय यमाय नमः । ओ३म्—वनस्पतिभ्यो नमः । श्रियै नमः । भद्रकाल्यै नमः । इत्यादि लिखकर कहा है कि रेती वा पृथिवी ही पर पत्र विद्धा-कर उन पर पूर्वदिशादिके क्रमानुसार उपरोक्त मंत्र पढ़कर अन्नके भाग यानी ग्रास रखे, पीछे जो कोई अतिथि हो उस को खिला देवे और नमक मिलाहुआ अन्न अर्थात् दाल भात रोटी शाक बंगैरह उठाकर ( ६ ) छै भाग पृथिवीमें धरे ॥ इति ॥

‘हे प्रिय महाशयो ! अब जिद्द और पक्षपात के पर्दे नेत्रों से हटाओ और अपने उपदेशकों से यूद्धों कि स्वां० द० जीने इन उपरोक्त मन्त्रोंका अर्थ स्पष्टया क्यों नहीं लिखा ? क्या इस में कोई भेद है क्योंकि और जगह तो स्वामी जी ने एक शब्द भी पना पिता माता समझकर उनका अत्यन्त मेन व अहुसे आदु तर्पण करते हैं । परन्तु न मालूम कि वह उमाजी अपनी खियोको ( स्यां० द० रचित नम्बर ६ के “गाल्यपा” नाम वाले पितरोमें समझते व मानते हुए भी ) क्या मानेंगे या कहेंगे अपांत् दृध घी राने के कारण अप्रभ्य ही उन लापनी खियोको पिन्न-मज्जा में निङेंगे ॥

व्यर्थ नहीं छोड़ा है फिर यहां शर्यों का क्यों भोजन करगये ? क्यों साहब ! इन भागोंसे यथा प्रयोजन है ? आप तो विद्वानोंका नाम देवता कहते हैं फिर यह भाग किसके ? क्या बनस्पति और लक्ष्मी रोटी खाती है या पृथिवी खाने जाती है ? ईश्वर मूर्त्तिके सामने तो भोग रखनेमें आप को बड़ा रक्ष होता है और आप पृथिवी जड़ पदार्थको भोग संखते हैं यह क्या कात है और फिर अनुचरों (लश्चर व सेना) सहित इन्द्र, वत्सा, यम इत्यादिके नामोंसे रखना और उन को भाग देना यह तो आप सनातन क्या ले देंगे, अगर पुरानी नहीं है तो कहिये यज्ञ का नाम यहां भी हाकिम ही क्या होगा या नहीं ? और जब यापुद वह अनुचरों के सहित आजावेंगे तब कहिये गरीबका क्या हाल होगा उस का तो एक हो दिन में दिवाला निकालता है फिर ये रोज २ का नियम कहांतक चलेगा ॥

प्र० १५—आप तो विद्वानों को ही देवता कहते हैं फिर कहिये यह भद्रकाली, बनस्पति, जन महर इत्यादि भी कोई विद्वान् वर २ फिरने वाल हैं जिन्हें पृथक् २ भाग देनेको बतानाया है, और जब विद्वान् ही देवता हैं तो यह पन्द्रह सोलह नाम ग्लहदा ग्लहदा क्यों; क्या उन विद्वानोंके नामके साथ यह भद्रकाली बनस्पति इत्यादिका विशेषण रहता है सिवाय इसके इन पन्द्रह सोलह विद्वानोंको रोज रोज कहतिक कोई खिलावेगा उस पर अगर आप

कहें कि एक २ ग्रास निकालें तो कहिये कि क्या वे सक ग्रास से सन्तुष्ट हो सकते हैं कभी नहीं ! अगर आप कहें कि ये ईश्वर के नाम हैं तो हम कहते हैं कि ईश्वर एक है एक ही भाग निकालना योग्य है और अगर आप कहें कि उनके अनन्त नाम हैं तो नामानुसार भाग भी अनन्त होना चाहिये फिर ये पंद्रह सोलह ही क्यों ? और आपका ईश्वर निराकार है फिर निराकार ईश्वर कौसे इन साकार पदार्थों को खावेगा क्या निराकार ईश्वर को पाञ्च भौतिक प्राणीदी तरह भूख लगती है ? यदि नहीं कहो तो फिर ये आपके दिये सब भाग व्यर्थ हैं ? अगर्च हाँ कहो कि ईश्वर हमारे इस भक्ति को व्यापक रूप से देखकर प्रसन्न होता है तो अब आप ही फैसला करो कि हम सनातनी और आप समाजियोंमें पक्षे ( कट्टर ) मूर्त्तिपूजक कौन हुए ?

ग्रन्थ १६—(आमृतावचित्ताः पितरत्वप्रोणिता एका क्रिया द्वयर्थकरी प्रसिद्धा) व्याकरण महाभाष्य के इस प्रमाण से भी सृत पितरोंका तर्पण करना सिद्ध है। तब ऐसे प्रमाण वेदोक्त होने पर भी मरों के आद्व तर्पण मानने में तुम क्यों हिचकिचाते हो। क्या हमने सृत पुरुषों के आद्व तर्पण की सिद्धि में वेदादि के जो अनेक प्रमाण दिये हैं उनके लिये तुम्हारा कोई उपदेशक वा परिचित हाथ में वेद पुस्तक लेके शपथ कर कह सकेगा कि सृत आद्वके लिये ये सत्य २ प्रमाण नहीं हैं ॥

प्रश्न १७—( तृतीयाह प्रद्यौरिति यस्या पितर आसते अथर्व० १८ । २ । ४८ ) यहां से ऊपर प्रद्यौर नामक तीसरा लोक है जिस में पितर लोग रहते हैं । सो क्या तुम्हारे जीवित पितर कहीं आकाश में लटका करते हैं । और मंत्रमें कहेवे ही पितर हैं जिनके लिये आद्व तर्पण किया जाता है । तब व्या इससे जीवितों के आद्व माननेका खण्डन नहीं होता ? ॥

प्रश्न १८—सिद्धान्त शिरोमणि पुस्तक को स्वा० ८० ने प्रामाणिक माना है उसमें लिखा है कि (ततः शेषाणि कन्याया यान्यहानितुषोडश । क्रतुभिस्ता-नितुल्पानि पितृभ्योदत्तमक्षयम् ॥ ) क्या यह कन्या के सूर्य में होने वाले कनागत आद्वों के लिये आर्यं प्रमाण नहीं है ? ।

प्रश्न १९—क्या तुम लोगों ने यह मिथ्या कुतर्क नहीं किया है कि राजा कर्ण से चलने के कारण कर्णागत कहाये फिर कनागत अपभ्रंश हो गया । इस से कर्ण राजा के पहिले कनागत आद्व नहीं थे । क्योंकि जब सिद्धान्त शिरोमणि के प्रमाणानुसार कन्यागत शब्द से कनागत हुआ कनागत आद्व सनातन अनादि काल से बिछु होने पर तुम्हारा कुतर्क मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं हो गया । क्या अपनी ऐसी २ ऐसी २ मिथ्या कल्पनाओं का निर्मूल खण्डन हो जाने पर जब भी लज्जित नहीं होगे ? ॥

प्रश्न २०—(आद्वे शरदः । पा० ४ । ३ । १२ ॥ श-  
रदि भवं शारदिकं आद्वम् ) पाणिनि आचार्य के  
व्याकरण का यह सूच है—। अर्थ यह है कि शरद्  
कृतु नाम कार्तिक मे होने वाले आद्व शारदिक  
कहाते हैं । यहाँ अन्य कृतुओं के आद्वों का विचार  
छोड़ के शरदकृतु के खाम आद्वों का प्रमाण होने  
से क्या इन कनागतों का अचार पाणिनि आचार्य से  
भी पहिले अति प्राचीन काल से चला चिद्व नहीं है॥

प्रश्न २१—यदि तुम्हारा यह भत है कि पुनः के  
दिये आद्व का फल पिता को नहीं पहुंच सकता तो—  
मृतानामिहजन्तूनां, आद्वचेत्तु प्रिकारणम् ।  
जीवतामिहजन्तूनां, कृथापार्थेयकल्पनम्॥

मरे हुए प्राणियों को यदि आद्व का फल मिल  
सकता है तब जीवित मनुष्य जब मुसाफिरी से जावे  
तब घर के मनुष्य आद्व द्वारा उसकी सृष्टि मार्ग से  
वर्यों नहीं कर सकते । इस नास्तिक चार्चाके और  
तुम्हारे भत में क्या भेद है ? यदि कुछ भेद नहीं तो  
तुम भी नास्तिक चिद्व वर्यों नहीं हुए ?

<sup>1</sup> प्रश्न २२—तुम कहते हो कि मरे हुए पितादिको  
जन्मान्तर मे आद्वैतपंच का फल मिलने का कोई  
प्रत्यक्ष प्रमाण वा उनके हाथों की रसीद नहीं आती  
तो फल पहुंचता है यह कैसे मान लें ? तब तुमसे  
पूछा जाता है कि जपने किये शुभाऽशुभ कर्मों का  
फल जन्मान्तर में जपने को मिल जाता है इस में

क्या प्रमाण है ! क्या इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण वा रसीद दिखा सकते हो ? जब नहीं दिखा सकते तो यहाँ भी चार्दाक नाश्तिक का मत ( क्षणंकृत्वा घृतंपि-वेत् ) क्यों नहीं मान लेते हो ? ॥

प्रश्न २३—तुम कहते हो कि मरजाने पर अन्य के किये कर्म का फल अन्य को नहीं पहुंच सकता तो यदि कोई राजा र्षिस देशलाख रुपयों का किए खात्र के नाम वसीयत नाम कर जावे कि इस धन से अनाधाराय, सदावंत वा पाठशाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जायें करें, और वे काम ठीक २ बैसे ही हों तो क्या उन कार्मों से होने वाले उपकारों का फल उस धन दाता को जन्मान्तर में नहीं मिलेगा ? यदि कर्त्ताओं को मिलना कहो तो उन का कर्माया धन नहीं है और जिसने वसीयत नाम किया उसको फल न मिले तो क्या ऐसा पुण्य का काम निष्पल होगा ? फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कायदे से आद्वादि धर्म करनेके लिये पिता अपने पुत्रको धनादि सर्वस्त्र सौंपता है तब पुत्र कृत आद्वादि का फल पिता को क्यों नहीं मिलेगा ? ॥

प्रश्न २४—जब कि ( आत्मावै पुत्रनामाचि ) ( आत्मावैजायते पुत्रः ) इत्यादि ग्रुति और ( गर्भभ्रित्वेहजायते ) ( भायपुत्रःस्यकातनः ) इत्यादि स्मृतियों में पुत्र से पिता का अभेद वा एकता दिखाई है तब तुम फूट रूप भेद वा अन्य २ होने का फगड़ा क्यों लगाते हो !

# उपसंहार में निवेदन

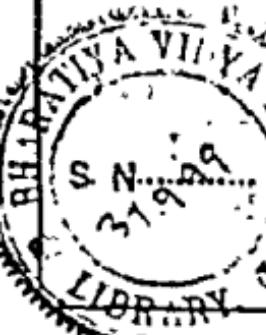
श्रीवर परम पूर्णीय भ्रातुवर प्रिय भूदेव ब्रह्मसरों के चरणारविन्दों में सविनय प्रार्थना यह है कि वे लपया इस करात्मकात्म समय का ठीक विचार करके आपने बाल-कों का वेदानुकूल संस्कार कराकर उन्होंके पूर्ण ब्रह्मचर्यकी रक्षा व पालना करने के लिये ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में भेज कर निज सात्र भाषा संस्कृत विद्या का पूर्णतया अध्ययन (अभ्यास) कराने में दिल व जानसे कोशिश करें। जिससे कि वे बालक अशिक्षित होकर क्रम पूर्वक कर्मकाण्ड-उपासना और ज्ञान रूपी अमूल्य रत्नों से जड़ी हुई तेजीमय स्फटिक, जालाको धारण करके सदाचार रूपी ज़िरह (कवच) पहिनकर और ब्रह्म विद्या रूपी संपूर्ण क्लेश नाशक अस्त्र लेकर वर्णश्रम धर्मानुसार, अशिक्षित अनभिज्ञ कुतर्कवादी युवकों के महामोह रूपव सुनातन सन्मार्ग से निरानने वाले शत्रुओं को निर्मूल करते हुए अवधबों (ओंग) रूप ब्रह्मिय-वैश्यादि द्वारा वेदोक्त धर्म यानी वेदोक्त देव-पिटजादि प्रिज्ञों का विधि पूर्वक ठीक २ प्रचार कराकर शीघ्र ही इस भारत भूमि यानी भारत माता का सौभाग्य बढ़ावें और सुनातन धर्म को रक्षा करें !!! ओंतत्सत्-इति शान्तिः ३ ॥

३० ऋष्णों का दास

निवेदक-गोकुलचन्द्र ॥ ठट्टा ॥

सत्त्वसान स्थान करांचो (सिंधु)

॥ समाप्तम् ॥



# नवीन पुस्तकों की सूचना ।

१—आद्विपितृभीमांसा—यह पुस्तक देवनागरी अक्षर और हिन्दीभाषा में लिखा है। इसमें वर्तमान आर्यसमाजियों के जितने ( आद्वि व पितृपञ्च ) कर्म में सन्देह अथवा आक्षेप होते हैं उन सबोंका प्रश्नोत्तररूपमें अत्यन्त प्रबल प्रमाण तथा चट्टयुक्तियोंसे ऐसा निवारण किया गया है कि लिनको एक-बार भी आदिसे अन्त तक पढ़नेसे थोड़ी बुद्धि बाला भी आस्तिक जन ठीक समझ सकता है कि ( आद्वि व पितृपञ्च किस कर्मका नाम है, उसका रहस्य क्या है और वेदादि सच्छास्त्रों में यह कर्म किनका अर्थात् जीवितोंका वा सृतपितरोंका दर्शित है ? )। पुस्तककी सार्वेज १८+२८ है ॥

[ वेदसंज्ञाविचार ]—इस पुस्तकमें वेदादि ग्रन्थ और निरुक्तादिसे ब्राह्मणग्रन्थों का वेदत्व सिद्ध किया है। तथा आर्यसमाजियोंके इसके विपक्षमें दिये प्रमाणों का सरणन है मू० ॥ पुस्तक नागरी भाषामें है ॥

( ३ )—[ आधुनिक महर्षिकी पोल ]—यह ट्रैबट और १००५ परमपूर्व जगत्गुरु श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश स्वामी शङ्कराचार्यजीके सम्मति पत्र समेत देवनागरी अक्षर हिन्दीभाषा में लिखा गया है। इस में स्वाठ दयानन्दसरस्वती ( वर्तमान आर्यसमन्योंके ऋषि गुरुजीका संस्कृत व्याकरण में सत्यवक्तव्यसामें ( अर्थात् उनके सत्यवादी होनेमें ) तथा उनके स्वरचित ग्रन्थोंके पूर्वापर विरोध होनेमें खूब ही पोल खोली व दिखायी गई है कि वह स्वामीजी व्याकरणमें कैसे विद्वान् ये ? । मूल्य )॥ छाकरुर्च अलग ॥

सिलनेका पता—सेकेटरी सनातनर्धम् सरहलान्तर्गत गीता—  
पाठशाला मुम्बई बाजार करांची सिन्ध तथा  
वेदराज सेठ मूलचन्द्र ( साध ) श्रीगिरिधारीजीके  
मन्दिरके पास ठट्ठा—सिन्ध